ગુજરાત રાજ્યના શિક્ષણવિભાગના પત્ર-ક્રમાંક
મશબ/1215/12-22/છ, તા. 1-3-2016 –થી મંજૂર

समाजशास्त्र

कक्षा 11

प्रतिज्ञापत्र

भारत मेरा देश है।
सभी भारतवासी मेरे भाई-बहन हैं।
मुझे अपने देश से प्यार है और इसकी समृद्धि तथा बहुविध परम्परा पर गर्व है।
मैं हमेशा इसके योग्य बनने का प्रयत्न करता रहूँगा।
मैं अपने माता-पिता, अध्यापकों और सभी बड़ों की इज्जत करूँगा एवं हरएक से नम्रतापूर्वक व्यवहार करूँगा।
मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि अपने देश और देशवासियों के प्रति एकनिष्ठ रहूँगा।
उनकी भलाई और समृद्धि में ही मेरा सुख निहित है।

राज्य सरकारनी विनामूल्ये योजना हेठळनुं पुस्तक

गुजरात राज्य शाला पाठ्यपुस्तक मंडल
'विद्यायन', सेक्टर 10-ए, गांधीनगर - 382010

© गुजरात राज्य शाला पाठ्यपुस्तक मंडल, गांधीनगर
इस पाठ्यपुस्तक के सर्वाधिकार गुजरात राज्य शाला पाठ्यपुस्तक मंडल के अधीन हैं।
इस पाठ्यपुस्तक का कोई भी भाग किसी भी रूप में गुजरात राज्य शाला पाठ्यपुस्तक मंडल के नियामक की लिखित अनुमति के बिना प्रकाशित नहीं किया जा सकता।

विषय-सलाहकार
डो. चंद्रिकाबहन रावल

लेखन-संपादन
डो. सारिकाबहन दवे (कन्वीनर)
डो. आनंद के. आचार्य
डो. जनकभाई जोशी
डो. पंकजभाई पटेल
डो. शैलजाबहन ध्रुव
डो. भूपेन्द्रभाई जे. ब्रह्मभट्ट
डो. कौशिक आर. शुक्ल
श्री अजीतकुमार बी. पटेल

अनुवाद
श्री प्रमोद लोढा
श्रीमती निरुपमा पांडेय

समीक्षा
श्री राजेशसिंह एस. क्षत्रिय
डो. किशोरीलाल कलवार

संयोजन
डो. चिराग एच. पटेल
(विषय-संयोजक : भौतिक विज्ञान)

निर्माण-आयोजन
श्री हरेन शाह
(नायब नियामक : शैक्षणिक)

मुद्रण-संयोजन
श्री हरेश एस. लीम्बाचीया
(नायब नियामक : उत्पादन)

प्रस्तावना

राष्ट्रीय अभ्यासक्रमों के अनुसंधान में गुजरात माध्यमिक और उच्चत्तर माध्यमिक शिक्षण बोर्ड ने नये अभ्यासक्रम तैयार किये हैं। ये अभ्यासक्रम गुजरात सरकार द्वारा मंजूर किये गये हैं।

गुजरात सरकार द्वारा मंजूर किये गए **कक्षा 11, समाजशास्त्र** विषय के नये अभ्यासक्रम के अनुसार तैयार की गई इस पाठ्यपुस्तक को विद्यार्थियों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए गुजरात राज्य शाला पाठ्यपुस्तक मंडल आनंद अनुभव कर रहा है।

इस पाठ्यपुस्तक का लेखन तथा समीक्षा विद्वान शिक्षकों और प्राध्यापकों से करवाई गई है। समीक्षकों की सुझावों के अनुरूप पांडुलिपि में योग्य सुधार करने के बाद यह पाठ्यपुस्तक प्रकाशित की गई है। गुजराती में लिखी गई मूल पाठ्यपुस्तक का हिन्दी अनुवाद है।

प्रस्तुत पाठ्यपुस्तक को रसप्रद, उपयोगी और क्षतिरहित बनाने के लिए मंडल ने पर्याप्त सावधानी रखी है। फिर भी शिक्षा में रुचि रखनेवाले व्यक्तियों से पुस्तक की गुणवत्ता में वृद्धि करनेवाले सुझावों का स्वागत है।

पी. भारती (IAS)
नियामक
दिनांक : 04-11-2019

कार्यवाहक प्रमुख
गांधीनगर

प्रथम संस्करण : 2016, पुनः मुद्रणा : 2018, 2020
प्रकाशक : गुजरात राज्य शाला पाठ्यपुस्तक मंडल, 'विद्यायन', सेक्टर 10-ए, गांधीनगर की ओर से पी. भारती, नियामक

मुद्रक :

मूल कर्तव्य

भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह* –

(क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे;

(ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन को प्रेरित करनेवाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे;

(ग) भारत की प्रभुता, एकता और अखण्डता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण रखे;

(घ) देश की रक्षा करे और आवाहन किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे;

(ङ) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो; ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध हैं;

(च) हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परम्परा का महत्त्व समझे और उसका परिरक्षण करे;

(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अन्तर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखे;

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे;

(झ) सार्वजनिक सम्पत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे;

(ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करे, जिससे राष्ट्र निरन्तर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊँचाइयों को छू ले;

(ट) यदि माता-पिता या संरक्षक है, छह वर्ष से चौदह वर्ष तक की आयु वाले अपने बालक या प्रतिपाल्य के लिए यथास्थिति शिक्षा के अवसर प्रदान करे।

* भारत का संविधान : अनुच्छेद 51–क

अनुक्रमणिका

1.	समाजशास्त्र : परिचय	1
2.	समाजशास्त्र के बुनियादी विचार	9
3.	सामाजिक व्यवस्था और सामाजिक रचनातंत्र	17
4.	सामाजिक प्रक्रियाएँ और सामाजिक परिवर्तन	23
5.	संस्कृति और सामाजीकरण	35
6.	भारत की मौलिक सामाजिक संस्थाएँ	42
7.	समाजशास्त्रीय संशोधन पद्धतियाँ	54
8.	पर्यावरण और समाज	63
●	परिशिष्ट 1 परिवार वृक्ष	75
●	परिशिष्ट 2 प्रश्नावली का नमूना	76

1 समाजशास्त्र : परिचय

प्रस्तावना

विद्यार्थी मित्रो, कक्षा 10 में आपने सामाजिक विज्ञान का एक विषय के रूप में परिचय प्राप्त किया था। कक्षा 10 तक इस विषय में आपन अपने आस-पास के पर्यावरण से भारतीय संस्कृति की भव्य विरासतों, कृषि व्यवस्था, आर्थिक विकास और उसकी समस्याओं, भौगोलिक विशेषताएँ, न्यायतंत्र जैसे अनेक मुद्दों की समझ प्राप्त की। सामाजिक विज्ञान में अनेक विज्ञानों का समावेश होता है; उनमें से एक विज्ञान समाजशास्त्र है। विद्यार्थी मित्रो, यहाँ एक बात यह भी स्पष्ट करनी जरूरी है कि जब हम 'विज्ञान' शब्द बोलतें हैं, तब उसमें दो प्रकार के विज्ञानों का समावेश होता है : (1) भौतिक या प्राकृतिक विज्ञान (2) सामाजिक विज्ञान।

भौतिक विज्ञान में पदार्थ विज्ञान, रसायन विज्ञान, भू-गर्भ शास्त्र अंतरिक्ष (अवकाश) विज्ञान आदि का समावेश होता है, जबकि सामाजिक विज्ञानों में समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, मानवशास्त्र, राजनीति विज्ञान आदि का समावेश होता है। यहाँ एक सामाजिक विज्ञान के रूप में समाजशास्त्र का अर्थ और उसकी विषयवस्तु को समझकर उसके उद्‌भव और विकास के साथ समाजशास्त्र की अन्य शाखाओं के विषय में परिचय प्राप्त करें।

समाजशास्त्र को अंग्रेजी में 'Sociology' कहते हैं। Sociology शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन भाषा के 'Socious' और ग्रीक भाषा के 'Logos' शब्दों से हुई है, इसे हम निम्न प्रकार से समझ सकेंगे।

समाजशास्त्र (Sociology)

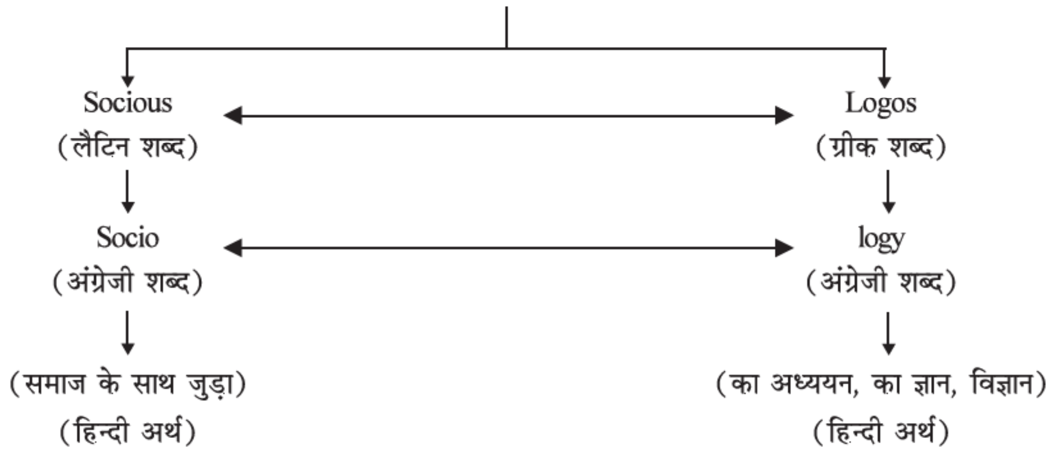

इस प्रकार, व्युत्पत्ति की दृष्टि से ऐसा कह सकते हैं कि समाजशास्त्र अर्थात् समाज से संबंधित वास्तविकताओं का वैज्ञानिक अध्ययन। एक सामाजिक विज्ञान के रूप में समाजशास्त्र के अध्ययन का केन्द्रबिंदु मनुष्य का सामाजिक जीवन है। वह मनुष्य के सामाजिक संबंधों के ताने-बाने को समझने-समझाने का प्रयत्न करता है, और इसलिए मेकाईवर और पेज नामक समाजशास्त्रियों के मतानुसार समाजशास्त्र की विषयवस्तु सामाजिक संबंधों अथवा सामाजिक संबंधों का जाल है, जिसे हम समाज के रूप में पहचानते हैं।

समाजशास्त्र की परिभाषा

किम्बोल यंग समाजशास्त्र की परिभाषा देते हुए बताते हैं कि 'समाजशास्त्र समूह में मानव के व्यवहार का अध्ययन करता है।'

यंग और मेक समाजशास्त्र की परिभाषा देते हुए बताते हैं कि, ''समाजशास्त्र मानव जीवन के सामाजिक पक्षों का वैज्ञानिक रूप से अध्ययन करता है।''

एच. एम. ज्हॉन्सन के अनुसार, 'समाजशास्त्र सामाजिक समूहों, उनके आंतरिक स्वरूप अथवा संस्था के विविध प्रकारों, उसे टिकाए रखने और परिवर्तन लाने वाली प्रक्रियाओं और समूह के बीच के संबंधों का अध्ययन करता है।'

विद्युत जोशी पारिभाषिक संग्रह में समाजशास्त्र का अर्थ बताते हुए लिखते हैं कि, 'समाजशास्त्र मानव के सामाजिक व्यवहारों का वैज्ञानिक अध्ययन करता है। वह व्यक्तिगत और सामूहिक आंतरक्रियाओं की प्रक्रियाओं, सामाजिक समूह के संगठनों के स्वरूप, प्रकारों, पारस्परिक संबंधों तथा व्यक्तिगत व्यवहारों पर सामूहिक प्रभावों का अध्ययन करता है।'

समाजशास्त्र के उद्‌भव से पूर्व व्यक्त हुआ समाज संबंधी चिंतन

एक सामाजिक विज्ञान के रूप में समाजशास्त्र का उद्‌भव हुए अभी पौने दो सौ वर्ष ही हुए हैं। तब विद्यार्थी मित्रों आपके मन में यह प्रश्न उत्पन्न होता होगा कि क्या पौने दो सौ वर्ष पूर्व समाज संबंधित कोई व्यवस्थित अध्यपन हुआ ही नहीं था? इस प्रश्न के जवाब के रूप में ऐसा कह सकते हैं कि समाज के अध्ययन की यह परंपरा ग्रीक चिंतकों प्लेटो (427-347 ई. पू.) और एरिस्टोटल (384-322 ई.पू.) के लेखनों से शुरू हुई थी । इन दोनों विद्वानों के अनुसार समाज एक सुग्रथित व्यवस्था है, और वह सामाजिक असमानता और श्रम विभाजन पर आधारित है। 14वीं सदी में ईब्न खाल्दुन (1332-1406) नामक विद्वान ने अरब जगत के विचरते कबीलों और स्थायी कबीलों की तुलना करके इतिहास को उत्क्रांति की प्रक्रिया के रूप में पहचान करवाकर, सामाजिक परिवर्तन का विचार प्रस्तुत किया था। इसके उपरांत थोमस हॉब्स (1588-1679), ज्हॉन लोक (1632-1704), विको (1668-1744), मोन्टेस्क्यू (1689-1715), रूसो (1712-1778), सेंट सीमोन (1760-1825) जैसे विद्वानों ने मानव समाज और सामाजिक व्यवस्था संबंधी विचार व्यक्त किए थे।

समाजशास्त्र का उद्‌भव

प्लेटो से लेकर सेंट सीमोन तक के अनेक विचारकों ने समाज संबंधी चिंतन प्रस्तुत किया; परंतु एक सामाजिक विज्ञान के रूप में समाजशास्त्र का उद्‌भव 19 वीं सदी में पश्चिम यूरोप में हुआ। 18 वी और 19 वीं सदी में पश्चिम यूरोप में तेजी से आये सामाजिक परिवर्तन, नवजागृति, इंग्लैण्ड में हुई औद्योगिक क्रांति और फ्रांस की राज्यक्रांति जैसे कारकों ने समाजशास्त्र के उद्‌भव का बीजारोपण किया। औद्योगिक क्रान्ति के कारण नये-नये उद्योग स्थापित होने लगे और श्रमजीवी वर्ग के शोषण की समस्या उत्पन्न हुई। फ्रांस में लुई राजाओं की अन्यायी शासनव्यवस्था के कारण सामाजिक अव्यवस्था की स्थिति उत्पन्न हुई। फिर नये-नये वैज्ञानिक आविष्कारों के परिणामस्वरूप अलग-अलग राष्ट्र एक-दूसरे के संपर्क में आने लगे। ऐसी परिस्थिति में वैज्ञानिक दृष्टिबिंदु से समाज के वस्तुलक्षी अध्ययन की आवश्यकता उत्पन्न हुई। फ्रांस के विद्वान दार्शनिक ऑगस्त कोंते ने सर्वप्रथम वैज्ञानिक दृष्टिबिंदु से समाज को वस्तुलक्षी रूप से समझने का प्रयत्न किया। प्राकृतिक घटनाओं की तरह समाज में घटनेवाली घटनाओं का भी वैज्ञानिक रूप से अध्ययन हो सकता है, ऐसा उन्हें लगा और सन् 1830 से 1842 दरम्यान छ: भाग में लिखी 'Positive Philosophy' नामक ग्रंथश्रेणी में कोंते ने; समाज के वैज्ञानिक अध्ययन संबंधी विविध सिद्धांत प्रस्तुत किये। समाज संबंधी अपने इन वैज्ञानिक अध्ययनों को सर्वप्रथम कोंते ने 'सामाजिक भौतिकशास्त्र' (Social Physics) के रूप में पहचान दी थी; परंतु यह शीर्षक अपने अध्ययन के साथ मेल न खाने पर सन् 1839 में उन्होंने सामाजिक भौतिकशास्त्र के बदले 'समाजशास्त्र' ऐसा नया नाम दिया। इसी कारण ऑगस्त कोंते को समाजशास्त्र के पिता के रूप में जाना जाता है।

ऑगस्त कोंते से शुरू हुआ समाजशास्त्र फ्रांस में इमाइल दुर्खिम, इंग्लैण्ड में ज्हॉन स्टुअर्ट मिल और हर्बट स्पेन्सर, जर्मनी में कार्ल मार्क्स और वेबर के अध्ययनों से आगे बढ़ने लगा। प्रारंभिक समय दरम्यान इन समाजशास्त्रियों द्वारा दिए गए योगदान के कारण वे प्रशिष्ट समाजशास्त्री के रूप में प्रसिद्ध हुए। इन समाजशास्त्रियों के योगदान के द्वारा किस तरह समाजशास्त्र का विकास हुआ और समाजशास्त्र के अध्ययन में किन-किन बातों का समावेश हो सकता है, इस विषय में जानकारी प्राप्त करें।

ऑगस्त कोंते

ऑगस्त कोंते (1798-1857)

ऑगस्त कोंते ने 'Positive Philosophy' और 'Positive Polity' नामक दो ग्रंथश्रेणी में समाज की व्यवस्था और प्रगति के अध्ययन संबंधी वैज्ञानिक नियम प्रस्तुत किऐ। कोंते के अनुसार समाज निर्मित नियमों द्वारा ही समाज के विविध घटकों के बीच एकता स्थापित होती है और यही सही अर्थों में सामाजिक व्यवस्था है। यदि सामाजिक व्यवस्था को टिकाए रखनेवाले नियमों का ही अभाव हो तो समाज में अस्थिरता आती है, और सामाजिक व्यवस्था

के विघटन की तथा सामाजिक मूल्यों के पतन की परिस्थिति उत्पन्न होती है। इस तरह कोंते समझाते हैं कि सामाजिक व्यवस्था के कारण सामाजिक प्रगति (विकास) नहीं हो सकता। सामाजिक व्यवस्था और सामाजिक प्रगति दोनों एक-दूसरे पर निर्भर हैं। इसके उपरांत कोंते ने धार्मिक स्तर, आधिभौतिक स्तर और प्रत्यक्ष स्तर इन तीन स्तरों द्वारा चरणबद्ध सामाजिक व्यवस्था की प्रगति का वर्णन प्रस्तुत किया है। इस जानकारी द्वारा कोंतेने समाजशास्त्र को सामाजिक व्यवस्था और सामाजिक प्रगति के सिद्धांतों और नियमों का अध्ययन करनेवाले विज्ञान के रूप में पहचान करवाई। साथ ही साथ कोंते ने निरीक्षण, तुलना, प्रायोगिक और ऐतिहासिक पद्धति ने विनियोग द्वारा समाज का वैज्ञानिक अध्ययन करने की हिमायत की और समाज में घटती घटनाओं के कार्य-कारण संबंध को जाँचने पर जोर दिया। इस प्रकार ऑगस्त कोंते से समाज का वैज्ञानिक अध्ययन आरंभ हुआ।

इमाइल दुर्खिम (1858-1917)

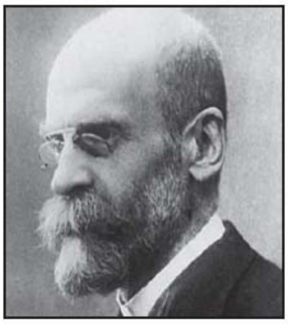

इमाइल दुर्खिम

फ्रांस के विद्वान इमाइल दुर्खिम ने समाज के गहन वैज्ञानिक अध्ययन द्वारा ऑगस्त कोंते के रोपित समाजरूपी बीज को अंकुरित करने का कार्य किया। दुर्खिम मानते थे कि समाजशास्त्र मात्र समाज का पृथक्करण नहीं करता; परंतु इससें विशेष तो वह सामाजिक जीवन जीने की कला है। समाजशास्त्र किसी अगोचर विश्व का नहीं; परंतु जीवित व्यक्तियों के समूह का अध्ययनकर्ता होने से दुर्खिम को इस विषय के अध्ययन में विशेष रुचि उत्पन्न हुई। उनका उद्देश्य व्यक्ति और समूह के बीच के संबंध खोजना था, इसी से ही उन्होंने सामाजिक तथ्यों के अध्ययन करने पर बल दिया। दुर्खिम के अनुसार सामाजिक तथ्य समूहजीवन में से ही उद्भव होते हैं। ऐसे तथ्य व्यक्ति के बाहर हैं और व्यक्ति को कुछ निश्चित रूप से व्यवहार करने का अधिकार देते हैं। इसके उपरांत इन तथ्यों का वस्तुलक्षी रूप से निरीक्षण भी किया जा सकता हैं। उदाहरण के रूप में भारतीय समाज के संदर्भ में हमारे रिवाज, परंपराएँ आदि सामाजिक तथ्यों के रूप में जाने जा सकते हैं। दुर्खिम बताते हैं कि सामाजिक तथ्यों को वस्तुओं के रूप में देखना चाहिए, जिससे उनका अध्ययन सही ढंग से हो सकता है। 'The Rules of Sociological Method' में तथ्यों की जानकारी देकर दुर्खिम ने समाजशास्त्र की पद्धतिशास्त्र में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इसके उपरांत आत्महत्या, श्रम विभाजन और सामाजिक एकता, धर्म, सामूहिक प्रतिनिधित्व जैसे सिद्धांत देकर दुर्खिम ने समाजशास्त्र के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निमाई।

हर्बर्ट स्पेन्सर (1820-1903)

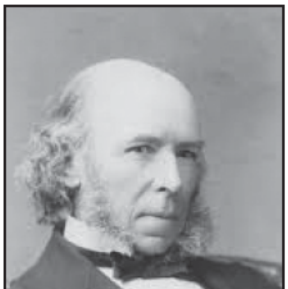

हर्बर्ट स्पेन्सर

19 वीं सदी के ब्रिटिश समाजशास्त्री हर्बर्ट स्पेन्सर ने सन् 1873 में 'The Study of Sociology' और सन् 1876 में 'The Principles of Sociology' जैसी पुस्तकों में समाज के विकास की प्रक्रिया समझने के लिए सामाजिक उत्क्रांति का सिद्धांत प्रस्तुत किया। स्पेन्सर ने समाज की जीवंत देह के साथ तुलना की, समाज का एक जीवित प्राणी के रूप में वर्णन किया है। जिस तरह शरीर अलग-अलग अंगों (भागों) से बना है, इसी तरह समाज भी अलग-अलग अंगों (भागों) से बना हुआ है; और यदि समाज को जीवित रखना हो तो इसके अलग-अलग भागों को मिलकर कार्य करना पड़ेगा। इस बात को स्पेन्सर ने अपने इस सिद्धांत में स्पष्ट किया। उनके इस सिद्धांत में प्राणियों की तरह समाज की भी उत्क्रांति होती है। यह बात सबसे महत्त्वपूर्ण रही थी।

विशेष उल्लेखनीय है कि गुजरात के क्रान्तिवीर श्यामजी कृष्ण वर्मा अपने लंदन निवास के दरम्यान हर्बर्ट स्पेन्सर से प्रभावित हुए थे और स्पेन्सर के अवसान के बाद उन्होंने हर्बर्ट स्पेन्सर इण्डियन फेलोशिप भी घोषित की थी।

कार्ल मार्क्स (1818-1883)

जर्मनी के विद्वान कार्ल मार्क्स समाजशास्त्र में संघर्षवादी और समाजवादी विचारशाखा के प्रणेता माने जाते हैं। मार्क्स सर्वप्रथम ऐसे विचारक थे जिन्होंने ऐतिहासिक घटनाओं पर आर्थिक परिस्थितियों का प्रभाव होता है, इस बात पर बल

दिया। उनके मतानुसार अलग-अलग चरणों में उत्पादन के साधनों के आधार पर सामाजिक वर्गों की रचना होती है और इतिहास के प्रत्येक चरण में हमेशा दो वर्गों का अस्तित्व रहा है। ये वर्ग अर्थात् मालिक वर्ग और श्रमजीवी वर्ग। मार्क्स कहते हैं कि इन दो वर्गों के बीच हमेशा संघर्ष चलता रहता है। सतत चलनेवाली इस वर्ग संघर्ष की प्रक्रिया के विषय में वे 'Communist Manifesto' में लिखते हैं कि मानवसमाज का आज तक का इतिहास वर्ग-संघर्ष का इतिहास है। मार्क्स नें विश्वभर के श्रमजीवियों को एक होकर पूँजीवादी समाजव्यवस्था को दूर करके वर्गविहीन समाज व्यवस्था स्थापित करने का आहवान किया था। उनकी लिखी हुई 'Das Capital' पुस्तक आज भी लोकप्रिय है। कार्ल मार्क्स के विचार समाजशास्त्र के उपरांत अर्थशास्त्र, राज्यशास्त्र, तत्त्वज्ञान जैसे सामाजिक विज्ञानों में भी विशेष महत्त्वपूर्ण रहे हैं।

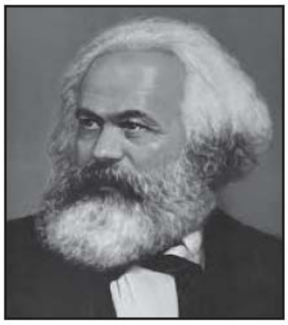

कार्ल मार्क्स

मेक्स वेबर (1864-1920)

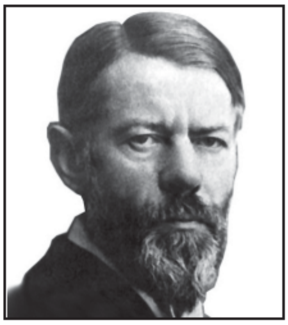

मेक्स वेबर

मनुष्य के सामाजिक व्यवहार को समझने-समझाने में जर्मनी के मेक्स वेबर का नाम महत्त्वपूर्ण है। वेबर के अनुसार समाजशास्त्र की मुख्य अध्ययन वस्तु सामाजिक क्रिया है और समाजशास्त्र को विज्ञान के रूप में स्थान दिलाने में वे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसी से वे समाजशास्त्र का सामाजिक क्रिया की अर्थपूर्ण जानकारी देने वाले शास्त्र के रूप में पहचान करवाते हैं। वेबर की दी गई आदर्श प्रकार की पद्धति सामाजिक संशोधन में विशेष उपयोगी सिद्ध हुई है। विश्व के अलग अलग धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर वेबर के प्रस्तुत किए गए प्रोटेस्टन्ट धर्म की आचारसंहिता और उनका पूँजीवाद संबंधी अध्ययन तथा सत्ता, नौकरशाही जैसे समाजशास्त्रीय अध्ययनों ने समाजशास्त्र को विकसित होने में विशेष योगदान दिया है।

इस प्रकार, फ्रांस में ऑगस्त कोंते द्वारा रोपे गए समाजशास्त्र रूपी बीज धीमे-धीमे वटवृक्ष बनने लगा । यूरोप के उपरांत अमेरिका और इंग्लैण्ड में उसका खूब ही तेजी से विकास होने लगा। सन् 1876 में अमेरिका के येल विश्वविद्यालय में विलियम ग्राहम सम्नर के प्रयत्नों से सर्वप्रथम समाजशास्त्र का अध्ययन एवं अध्यापन कार्य शुरू हुआ। सन् 1890 में यूनिवर्सिटी ऑफ केन्सास में 'Elements of Sociology' (समाजशास्त्र के तत्त्व) शीर्षक से समाजशास्त्र अध्ययनक्रम शुरू हुआ। तो यूरोप में सन् 1895 में युनिवर्सिटी ऑफ बोर्डेक्स में (जर्मनी) इमाइल दुर्खिम के प्रयत्न से समाजशास्त्र का अध्ययन-अध्यापन कार्य शुरू हुआ।

भारत में समाजशास्त्र का विकास

गोविंद सदाशिव घूर्ये

भारत में सन् 1914 में सर्वप्रथम मुंबई विश्वविद्यालय में अनुस्नातक कक्षा में समाजशास्त्र का अध्यापन कार्य शुरू हुआ। ब्रिटेन के प्रसिद्ध समाजशास्त्री और नगर नियोजन के अध्येता पेट्रिक गिड्स की अध्यक्षता में इस यूनिवर्सिटी में समाजशास्त्र का अनुस्नातक विभाग शुरू हुआ। सन् 1924 में प्रसिद्ध समाजशास्त्री डॉ. गोविंद सदाशिव घूर्ये इस विभाग के अध्यक्ष बने। सन् 1952 में स्थापित 'इण्डियन सोशियोलॉजिकल बुलेटिन' के प्रमुख संपादक घूर्ये ने भारत में समाजशास्त्र के विकास की एक नई दिशा प्रदान की। घूर्ये के अध्ययनों और उनके द्वारा तैयार किए समाजशास्त्र के विद्यार्थियों की पीढ़ी के कारण मुंबई विश्वविद्यालय भारत में समाजशास्त्र का अध्ययन केन्द्र बना।

सन् 1917 में कोलकत्ता विश्वविद्यालय में वृजेन्द्रनाथ शील के प्रयत्नों से अर्थशास्त्र के साथ समाजशास्त्र का अध्ययन-अध्यापन कार्य शुरू हुआ, तो लखनऊ विश्वविद्यालय में राधाकमल मुखर्जी और डी.पी. मुखर्जी ने और पूना विश्वविद्यालय में ईरावती कर्वे ने समाजशास्त्र के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

भारत के अलग-अलग समाजशास्त्रियों ने समाजशास्त्र के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। जैसे कि एम. एन. श्रीनिवास, एस. सी. दुबे, डी. पी. मुखर्जी, डेविड हार्डीमेन, योगेन्द्रसिंह, ए. एम. शाह आदि। गांधीजी और बाबा साहेब आंबेडकर जैसे समाजसुधारको, समाजचिंतकों ने भी भारतीय समाज को वैज्ञानिक रूप से समझाने का प्रयास किया।

तदुपरांत 'इण्डियन काउंसिल ऑफ सोश्यल साइन्स रिसर्च' (आई. सी. एस. एस. आर.) और यू.जी.सी. द्वारा सामाजिक संशोधन के लिए वित्तीय सहायता होने पर समाजशास्त्रीय संशोधनों को भी वेग प्राप्त हुआ।

ताराबेन पटेल

भारत के अन्य विश्वविद्यालयों की तरह गुजरात के विविध विश्वविद्यालयों जैसे गूजरात विद्यापीठ में स्नातक और अनुस्नातक स्तर पर समाजशास्त्र का अध्ययन और अध्यापन कार्य शुरू हुआ। इसके उपरांत मेडिकल, नर्सिंग जैसे पाठ्यक्रमों में भी समाजशास्त्र एक विषय के रूप में सिखाया जा रहा है। इसके उपरांत सूरत में आई. पी. देसाई द्वारा स्थापित 'सेन्टर फॉर सोशियल स्टडीज' नामक संस्था गुजरात में सर्जनात्मक सामाजिक संशोधन को वेग प्रदान कर रही है। इसी संस्था के 'अर्थात्' नामक सामायिक ने गुजरात के संशोधकों के संशोधन लेख प्रकाशित करके उनकी संशोधन प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन प्रदान किया।

गुजरात में समाजशास्त्र के विकास में एन.ए. थूथी, आई. पी. देसाई, अक्षयकुमार देसाई, ताराबेन पटेल, ए. एम. शाह आदि का योगदान उल्लेखनीय रहा है।

समाजशास्त्र का विषयक्षेत्र

यहाँ विषय के साथ जुड़ा 'क्षेत्र' शब्द हमें समाजशास्त्र विषय की निश्चित हद-सीमा प्रदान करता है। इस निश्चित की गई सीमारेखा में जिन-जिन बातों का समावेश किया जाता है वही समाजशास्त्र की विषयवस्तु है। इस तरह देखें तो अन्य सामाजिक विज्ञानों की तरह समाजशास्त्र का भी अपना विशिष्ट विषयक्षेत्र और विषयवस्तु है।

मूलभूत रूप से सामाजिक संबंधों और सामाजिक संस्थाओं का अध्ययन करते हुए समाजशास्त्र हमारे आसपास के अनेकविध सामाजिक पक्षों को समाविष्ट कर लेता है। जिसमें मुख्य रूप से समाज का सातत्य बनाए रखते और उनमें परिवर्तन लानेवाले कारकों को समझाता है। समाजशास्त्र की विषयवस्तु में समाज जीवन का मूलभूत इकाइयों, आधारभूत सामाजिक संस्थाओं, प्रक्रियाओं और समस्याओं का समावेश होता है। 'एलेक्ष इक्लिस' नामक विद्वान ने उसका विस्तृत वर्णन पेश किया है। यहाँ हम समाजशास्त्र की विषयवस्तु को निम्नानुसार समझेगे :

अ. समाज की मूलभूत इकाइयों का अध्ययन :

(1) समाज में व्यक्तियों के बीच के संबंध, आंतरक्रिया, सामाजिक स्तर, सामाजिक पद और सामाजिक भूमिका, सामाजिक ढांचा, संस्कृति आदि का अध्ययन।

(2) सामाजिक समूहों, उनके प्रकार, लक्षणों और समूहों के बीच के आंतरसंबंध

(3) समुदायों : ग्राम समुदाय, नगर समुदाय, आदिवासी समुदाय

(4) सामाजिक मंडल और संगठन

(5) समाज की जनसंख्या विषयक लाक्षणिकताएँ

ब. मूलभूत सामाजिक संस्थाओं का अध्ययन :

(1) परिवार और सगाई संबंध

(2) आर्थिक संस्थाएँ (व्यापार-वाणिज्य, औद्योगिक समूह व्यावसायिक समूह आदि)

(3) राजकीय संस्थाएँ (सरकार, राजनैतिक प्रश्न, विधायिका, पंचायत आदि)

(4) कानूनी संस्थाएँ (संविधान, कानून व्यवस्था, कानून और सामाजिक परिवर्तन)

(5) धार्मिक संस्थाएँ (धर्म, संप्रदाय, सामप्रदायिक तनाव)

(6) जाति व्यवस्था (जाति का उद्‌भव, विकास, लक्षण)

(7) शिक्षण संस्थाएँ (शिक्षण संस्थाएँ और सामाजिक परिवर्तन के साधन के रूप में शिक्षा का महत्त्व)

स. मूलभूत सामाजिक प्रक्रियाएँ :

(1) सहयोग, स्पर्धा, संघर्ष, अनुकूलन और आत्मसातीकरण जैसी प्रक्रियाएँ।

(2) समाज के सदस्यों को समाज मान्य व्यवहार और स्तर सिखाती सामाजीकरण की प्रक्रिया।

(3) सामाजिक विचलन और सामाजिक नियंत्रण की प्रक्रिया

समाजशास्त्र का अन्य सामाजिक विज्ञान के साथ संबंध

(1) समाजशास्त्र और मानवशास्त्र : मानवशास्त्र मनुष्य का अध्ययन करनेवाला विज्ञान है, जबकि समाजशास्त्र समाज का वैज्ञानिक अध्ययन करता है। मानवशास्त्र मनुष्य के आरंभ से सांप्रत जीवन तक शारीरिक, सांस्कृतिक और पुरातत्त्वीय पक्षों को समझने का प्रयत्न करता है। इस तरह मानवशास्त्र को तीन भागों में बाँटा जा सकता है : (अ) शारीरिक मानवशास्त्र (ब) सांस्कृतिक मानवशास्त्र (स) पुरातत्त्वीय मानवशास्त्र।

शारीरिक मानवशास्त्र मनुष्य की शरीर रचना, उनके अलग-अलग शारीरिक लक्षण, मनुष्य की अलग-अलग जातियों (Race) और ये जातियाँ एक-दूसरे से किस तरह अलग पड़ती है, उसका अध्ययन करती हैं। सांस्कृतिक मानवशास्त्र आदिमानव के आचार, रूढ़ियाँ, जीवनशैली, उसकी सामाजिक संस्थाएँ आदि का अध्ययन करती हैं। जबकि पुरातात्विक मानवशास्त्र संशोधन के दरम्यान प्राप्त हुए अवशेषों के आधार पर पुरातन संस्कृति के उद्‌भव और उसके विकास का अध्ययन करता है।

एक तरह से देखा जाए तो मानवशास्त्र समाजशास्त्र के अध्ययन की पूर्व तैयारी का चरण है। मानवशास्त्र और समाजशास्त्र के बीच की भेद रेखा बहुत ही पतली है। दोनों की पद्धतिशास्त्र और दृष्टिकोण में अंतर होने के उपरांत दोनों विज्ञान परस्परावलंबी हैं। मानवशास्त्र शारीरिक लक्षणों और संस्कृति को समझने का प्रयत्न करता है, जबकि समाजशास्त्र के अध्ययन का केन्द्र बिंदु मानव समाज और सामाजिक संबंध है। इस तरह यदि मानवसमाज और सामाजिक संबंधों को समझना हो तो संस्कृति की जानकारी लेना आवश्यक है। अत: मानवशास्त्र के अध्ययन बिना समाजशास्त्र का अध्ययन अधूरा है।

(2) समाजशास्त्र और मनोविज्ञान : मनोविज्ञान व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन करनेवाला विज्ञान (शास्त्र) है। समाजलक्षी मनोविज्ञान समाज तथा समुदाय में रहनेवाले व्यक्तियों के व्यवहार अथवा व्यक्ति के सामुदायिक जीवन, समुदाय के नियम, मूल्य, उद्देश्य आदि के संदर्भ में अध्ययन करता है।

समाजशास्त्र समाज का अध्ययन करता है। यह भिन्न-भिन्न समुदायों की रचना तथा कार्य जाँचता है। अलग-अलग समुदाय के बीच के पारस्परिक संबंध, समाज में आने वाले परिवर्तन आदि का अध्ययन करता है। मनोविज्ञान व्यक्ति का अध्ययन करता है और समाजशास्त्र समाज या समुदाय का अध्ययन करता है। दोनों विज्ञान के बीच अंतर तथा परस्परावलंबन भी देखा जाता है। मनोविज्ञान व्यक्ति के व्यक्तित्त्व में संगठित हुए व्यवहार, उसके शारीरिक, मानसिक तथा व्यक्तिगत अनुभवों के संयुक्त असर द्वारा बने व्यवहार का अध्ययन करता है। व्यक्ति, समाज तथा समुदाय एक-दूसरे के साथ संलग्न है। अत: उनका अध्ययन करनेवाले क्रमश: मनोविज्ञान तथा समाजशास्त्र परस्पर संबंध रखते हैं।

ये दोनों विज्ञान एक-दूसरे से जानकारी का आदान-प्रदान करते हैं। समाजशास्त्र व्यक्ति, व्यक्तित्व आदि के अध्ययन में मनोविज्ञान से जानकारी प्राप्त करती है, जबकि मनोविज्ञान व्यक्ति के व्यवहार को समझने में समूह को ध्यान में रखता है। ऐसे समूह संबंधी जानकारी समाजशास्त्र से प्राप्त करती है। समाजशास्त्र और मनोविज्ञान, समाजलक्षी मनोविज्ञान के क्षेत्र में गहन रूप से संलग्न हैं। इसके अलावा अनेक समान अध्ययन प्रश्न जैसे कि मूल्य, लोकमत, समूह आदि के अध्ययन में दोनों सामाजिक विज्ञानों के बीच कोई अंतर नहीं रहता।

(3) समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र : अर्थशास्त्र का मुख्य उद्देश्य मनुष्य के आर्थिक संबंधों को समझना है। वस्तु की उत्पत्ति, उसका वितरण, वितरण के विविध प्रकार, उसमें आनेवाले परिवर्तन, वस्तु की माँग, उसकी पूर्ति, वस्तु का मूल्य, राष्ट्रीय आय, आर्थिक संगठनों का उद्‌भव, विकास उसके लाभ–हानियाँ जैसी बातें अर्थशास्त्र के साथ संलग्न है। जबकि समाजशास्त्र के अध्ययन का केन्द्रबिंदु सामाजिक संबंध है। समाज में उत्पन्न होनेवाली घटनाओं की समाजशास्त्रीय दृष्टिबिंदु से जाँच करना समाजशास्त्र का उद्देश्य है।

इन दोनों सामाजिक विज्ञानों में विषयक्षेत्र और अभिगम की बात में भिन्नता होने पर भी ये दोनों एक–दूसरे के साथ संलग्न हैं। मनुष्य की आर्थिक क्रिया वह जिस समाज में रहता है, उसी समाज में उद्‌भव होती है, और विकसित होती है। इसलिए ऐसा कह सकते हैं कि समाज आर्थिक क्रियाओं से और आर्थिक क्रियाएँ समाज से प्रभावित होती हैं।

इसके अलावा बेकारी, गरीबी, जनसंख्या वृद्धि जैसी समस्याओं का अध्ययन दोनों सामाजिक विज्ञान करते हैं। जबकि दोनों का दृष्टिकोण अलग–अलग है। बेकारी के जवाबदार कारक कौन–कौन से हैं यह जानने का प्रयत्न अर्थशास्त्र करता है, जबकि समाजशास्त्र बेकारी के सामाजिक पक्षों को समझने की तरफ अपना ध्यान केन्द्रित करता है। परंतु एक बात स्पष्ट है कि मनुष्य के आर्थिक जीवन को समझने के लिए उसकी सामाजिक प्रवृत्तियों तथा सामाजिक प्रवृत्तियों को समझने के लिए उसकी आर्थिक प्रवृत्तियों को समझना जरूरी है। इस अर्थ में दोनों सामाजिक विज्ञान एक–दूसरे के सहायक बनते हैं।

(4) समाजशास्त्र तथा राज्यशास्त्र : राज्यशास्त्र सत्ता का सर्जन, उपयोग तथा उसके वितरण का अध्ययन करता है। सत्ता के सर्जन तथा अमल के साथ संबंध रखनेवाले व्यक्ति के व्यवहार तथा संस्था, राज्यशास्त्र के केन्द्र में हैं। समाजशास्त्र राजकीय संस्था का विस्तार से अध्ययन करता है। अब समाजशास्त्र में राजकीय समाजशास्त्र का एक विशिष्ट शाखा के रूप में उद्‌भव हुआ है। अत: राजकीय समाजशास्त्री तथा राज्यशास्त्री मतदान, व्यवहार, राजकीय रवैया, राजकीय पतनों के रचनातंत्र, राजकीय व्यवस्था के द्वारा हांसिल की जाती गतिशीलता सामाजिक तथा राजकीय आंदोलन तथा अमलदारी जैसे समान मुद्दों पर अध्ययन करने लगे हैं। राज्यशास्त्र अपने सिद्धांतों के लिए समाजशास्त्र पर अवलंबन रखता है। उदाहरण के तौर पर मेक्स वेबर के अमलदारशाही के विचारों का उपयोग आधुनिक राज्य व्यवस्था तथा पूँजीवाद को समझने के लिए किया जाता है। जाति तथा धर्म की वर्तमान राजनीति के महत्त्व को समझाने के लिए समाजशास्त्रीय जानकारी होना आवश्यक है।

समाजशास्त्र की शाखाएँ

समाजशास्त्र का कार्यक्षेत्र अत्यंत व्यापक है। इससे ही समाजशास्त्र की अनेक शाखाएँ विकसित हुई हैं। इन शाखाओं की विशेषता यह है कि प्रत्येक शाखा समाजशास्त्रीय दृष्टिबिंदु से समाज के सभी क्षेत्रों का अध्ययन करती है। इस अर्थ में प्रत्येक शाखा के पास समाज के हर पक्ष का विशिष्ट ज्ञान है।

एक अंदाज के अनुसार समाजशास्त्र की 50 से अधिक शाखाएँ हैं। समाजशास्त्र की इन शाखाओं में – ग्रामीण समाजशास्त्र, नगर समाजशास्त्र, परिवार का समाजशास्त्र, शिक्षा का समाजशास्त्र, प्रादेशिक समाजशास्त्र, औद्योगिक समाजशास्त्र, ज्ञान का समाजशास्त्र, जाति समाजशास्त्र, सामाजिक मानवशास्त्र, समाजलक्षी मनोविज्ञान, धर्म का समाजशास्त्र, स्त्रियों का समाजशास्त्र, साहित्य का समाजशास्त्र, विकास का समाजशास्त्र, युवाओं का समाजशास्त्र, कानून का समाजशास्त्र आदि का समावेश होता है। भारत में समाजशास्त्र के विकास में इन सभी संस्थाओं का विशिष्ट योगदान रहा है।

इस इकाई में हमने समाजशास्त्र के उद्‌भव और विकास का परिचय ग्रहण करके समाजशास्त्र का अन्य विज्ञानों के साथ संबंध की जानकारी प्राप्त की। अब आगे की इकाई में हम समाजशास्त्र के मूलभूल ख्यालों (विभावना) का परिचय प्राप्त करेंगे।

स्वाध्याय

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर विस्तार से दीजिए :

(1) समाजशास्त्र की विषय वस्तु समझाइए।

(2) समाजशास्त्र का अर्थ समझाकर समाजशास्त्र के उद्‌भव के विषय में समझाइए।

(3) इमाइल दुर्खिम और मेक्स वेबर का समाजशास्त्र में योगदान समझाइए।

2. निम्नलिखित प्रश्नों के मुद्दासर उत्तर लिखिए :

(1) भारत में समाजशास्त्र का विकास।

(2) समाजशास्त्र और मनोविज्ञान।

(3) ऑगस्त कोंते

3. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षिप्त में लिखिए :

(1) समाजशास्त्र की परिभाषा लिखिए।

(2) समाजशास्त्र की शुरूआत किसने, कब और किस पुस्तक में की थी ?

(3) समाजशास्त्र की विविध शाखाएँ बताइए।

(4) भारत में समाजशास्त्र के विकास में योगदान देनेवाले समाजशास्त्रियों के नाम लिखिए।

4. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक-एक वाक्य में दीजिए :

(1) कार्ल मार्क्स द्वारा लिखित प्रसिद्ध पुस्तक का नाम लिखिए।

(2) भारत में सर्वप्रथम किस विश्वविद्यालय की शुरुआत हुई ?

(3) गुजरात में समाजशास्त्र के विकास में योगदान देनेवाले विद्वानों के नाम लिखिए।

(4) येल विश्वविद्यालय में किसके प्रयत्न से समाजशास्त्र का अध्ययन शुरू हुआ ?

5. निम्नलिखित विकल्पों में से सही विकल्प चुनकर लिखिए :

(1) समाजशास्त्र के स्थापक का नाम बताइए।

(अ) मेक्सवेबर (ब) ऑगस्त कोंते (क) कार्ल मार्क्स (ड) हर्बर्ट स्पेन्सर

(2) सामाजिक तथ्यों का विचार किसने दिया ?

(अ) इमाइल दुर्खिम (ब) हर्बर्ट स्पेन्सर (क) कार्ल मार्क्स (ड) ऑगस्त कोंते

(3) गुजरात में सर्जनात्मक सामाजिक संशोधन को कौन-सी संस्था वेग प्रदान कर रही है ?

(अ) सेन्टर फोर सोशियल स्टडीज (ब) इण्डियन सोशियोलोजिकल सोसायटी

(क) आई. सी. एस. एस. आर. (ड) तीनों में से एक भी नहीं

(4) नौकरशाही का विचार किसने दिया ?

(अ) कार्ल मार्क्स (ब) ऑगस्त कोंते (क) मेक्सवेबर (ड) जी. एस. घूर्ये

(5) इण्डियन सोशियोलोजिकल सोसायटी के प्रणेता स्रोत कौन थे ?

(अ) एम. एन. श्रीनिवास (ब) जी. एस. घूर्ये (क) आई. पी. देसाई (ड) ए. एम. शाह

प्रवृत्ति

- समाजशास्त्र के उद्‌भव और विकास में योगदान देनेवाले समाजशास्त्रियों का चार्ट तैयार कीजिए।
- समाजशास्त्र का अन्य सामाजिक विज्ञानों के साथ संबंध दर्शाते भित्तिचित्र तैयार कीजिए।
- समाज की बुनियादी संस्थाओं संबंधी चर्चा आयोजित कीजिए।
- नक्शे में समाजशास्त्रियों के जन्म स्थल और कार्यक्षेत्र के स्थल खोजिए।

2 समाजशास्त्र के बुनियादी विचार

प्रस्तावना

विद्यार्थी मित्रो किसी भी विज्ञान को समझना हो तो उसकी विषयवस्तु को समझने के लिए किन विभावनाओं या मान्यताओं का उपयोग करते हैं, यह जाँचना पड़ता है। प्रत्येक विज्ञान के अपने विचार (विभावना), सिद्धांत-परिप्रेक्षय और परिभाषा होती है। संकल्पनाएँ या विभावनाएँ अर्थात् प्रत्येक विज्ञान के पसंद किए विशिष्ट अर्थसूचित करते शब्द जिनके द्वारा विज्ञान अपनी अध्ययन सामग्री का अर्थघटन और प्रस्तुती करता है। संकल्पनाएँ घटना को सूचित करती तार्किक रचना हैं। किसी भी विज्ञान की संकल्पनाएँ निश्चित अर्थपूर्ण और ज्ञानेन्द्रियों (आँख, कान, नाक, जीभ, त्वचा) द्वारा जाँची जा सके वैसी और जो-जो घटनाएँ समझी जा सकें वैसी होती हैं। संकल्पनाओं की ऐसी सुसज्ज भाषा को वैज्ञानिक परिभाषा कहते हैं। समाजशास्त्री भी सामाजिक घटनाओं के देखने, जाँचने तथा उनका अर्थघटन करने के लिए निश्चित संकल्पनाओं का उपयोग करता है। मित्रो, इस इकाई में हम समाजशास्त्र की मूलभूत संकल्पनाएँ जैसे कि समाज, समुदाय, समूह, सामाजिक पद और भूमिका, सामाजिक स्तर और सामाजिक नियंत्रण की चर्चा करेंगे।

समाज (Society)

'समाज' शब्द को हम दैनिक व्यवहार में उपयोग में लेते हैं; परंतु समाजशास्त्र में इस शब्द का निश्चित अर्थ है। समाज यह एक विस्तृत विचार है। मित्रो, यहाँ हमें सर्वप्रथम स्पष्ट कर लेना जरूरी है कि हमें मानव समाज का ही परिचय होता है' क्योंकि हमारी रुचि और हित मानव समाज के साथ ही संलग्न होते हैं। इससे समाज मनुष्य तक सीमित है, ऐसी नासमझी उत्पन्न होती है; परंतु पशु, पक्षी, जीवजंतु भी सामाजिक जीवन जीते हैं। जैसे- दीमक, मधुमक्खी, चींटी, चिम्पांजी आदि जिनके सामाजिक जीवन के आधारभूत वैज्ञानिक अध्ययन हो चुके हैं। इस प्रकार मनुष्य के अलावा अन्य मानवेतर जीव का भी समाज होता है। मानव समाज और मानवेतर समाज (जीव) भी सामाजिक जीवन समानता रखते हैं इसके द्वारा वे अपनी मूलभूत आवश्यकताएँ जैसे की जनसंख्या की देखभाल, भरण-पोषण, संरक्षण, नये सदस्यों की भरती, कार्य विभाजन और समूह एकता द्वारा व्यवस्था का सातत्य बिठाते हैं। चिम्पांजी में से मनुष्य की उत्क्रांति किस तरह हुई यह चित्र द्वारा आप देख सकते हैं।

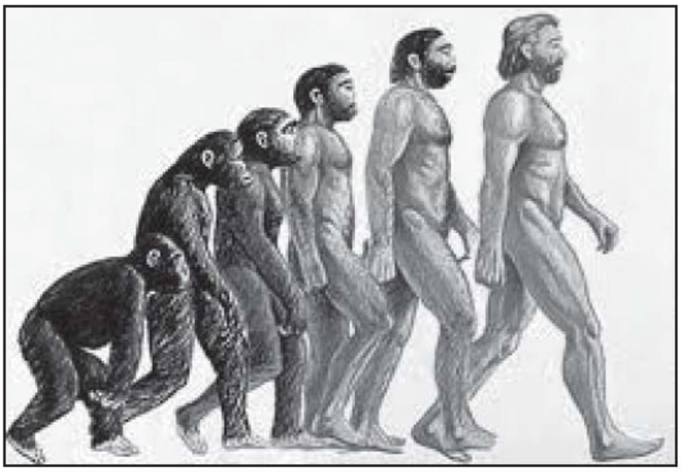

मानव उत्क्रांति

समाज का अर्थ और परिभाषा

दैनिक व्यवहार में समाज या सोसायटी (Society) शब्द सामान्य अर्थ में उपयोग होता है। जैसे कि हमारे समाज के रिवाज या नियम, इसी तरह महिला समाज, हाऊसिंग सोसायटी, सम्प्रदाय या जाति के लिए भी समाज शब्द का उपयोग होता है; परंतु समाजशास्त्र एक विज्ञान होने से समाज की संकल्पना का निश्चित और स्पष्ट अर्थ होता है।

समाजशास्त्रीय शब्दकोश में समाज को निश्चित भौगोलिक क्षेत्र और आत्मनिर्भरता रखनेवाले मानव समूह के रूप में वर्णन किया जाता है।

मेकाईवर और पेज नामक समाजशास्त्री समाज को प्रस्थापित सामाजिक संबंधों की हमेशा परिवर्तन प्राप्त करनेवाली व्यवस्था के रूप में परिभाषित करते हैं।

इस प्रकार, मानवसमाज प्रादेशिक समूह या मनुष्यों का एकत्रीकरण नहीं; परंतु सामाजिक संबंधों की जटिल और

परिवर्तन पाने वाली व्यवस्था है। समाज यह सार्वत्रिक और सर्वव्यापी है। जो अपनी सांस्कृतिक विशेषताओं के कारण मानव समाज से अलग पड़ता है।

समाज के लक्षण

(1) सामाजिक संबंध : मनुष्य-मनुष्य के बीच परस्पर उपस्थिति में समानतापूर्वक सामाजिक संबंध है। जो व्यक्ति-व्यक्ति, व्यक्ति-समूह या समूह-समूह के बीच सहयोग, स्पर्धा या संघर्ष स्वरूप में सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजकीय तथा अन्य प्रत्यक्ष या परोक्ष स्वरूप के संबंध हैं। व्यक्तियों के बीच की समानतापूर्वक आंतरक्रिया से सामाजिक संबंध स्थापित होते हैं और विकसित होते हैं।

(2) समानता और भिन्नता : समाज के सदस्यों में मनुष्य के रूप में मूलभूत साम्य दिखाई देता है। इसके साथ समाज में स्त्री-पुरुष की लैंगिक भिन्नता है। विद्यालय की कक्षा में विद्यार्थी मानवीय रूप में एक समानता रखते हैं। यद्यपि उनमें लिंग, उम्र, शारीरिक-बौद्धिक शक्तियाँ, रुचि, हित, मूल्य, उद्देश्यों में भिन्नता दिखाई देती है। समाज का उद्‌भव और संचालन साम्य और विभिन्नता के कारण संभव बनता है। समाज के लिए दोनों ही अनिवार्य और एक दूसरे के पूरक हैं।

(3) अलग-अलग समूह और उपसमूह : मानव समाज कौटुंबिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक और राजकीय समूहों और उपसमूहों में बंटा हुआ है, जो समाज का महत्त्वपूर्ण लक्षण है। सामाजिक जीवन की विविध आवश्यकताओं को संतुष्ट करने के लिए मनुष्यों के बीच कार्यविभाजन होता है। उसमें से सत्ता और पद के आधार पर सामाजिक कोटिक्रम विकसित होता है। जो सामाजिक असमानता सूचित करता है।

(4) सामाजिक नियंत्रण : अलग-अलग परिस्थितियों में व्यक्ति किस तरह व्यवहार कर सकता है, और किस तरह का व्यवहार नहीं कर सकता यह दर्शाती स्तर व्यवस्था या मान्यता प्रत्येक समाज में होती है उसे सामाजिक नियंत्रण कहते हैं। जो समाज के अस्तित्व और सातत्य के लिए जरूरी है। लोकनीति, रिवाज, फैशन, कानून, शिष्टाचार आदि समाज में मनुष्य का निर्माण और नियंत्रण करते हैं।

(5) सातत्य : सामाजिक नियंत्रण की पद्धति समाज के सातत्य को टिकाए रखती है। विवाह और परिवार संस्थाएँ समाज के सातत्य में सहायक होती है। सामाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा परिवार पीढ़ी-दर-पीढ़ी सामाजिक-सांस्कृतिक विरासत का आंतरीकरण करके समाज का सातत्य टिकाए रखती है।

(6) परिवर्तन : समाज के सातत्य के साथ उसमें परिवर्तन आते हैं। यद्यपि समय-समय और समाज-समाज में परिवर्तन की गति में अंतर होता है परंतु परिवर्तन समाज का अभिभाज्य लक्षण है।

मानव समाज को विस्तृत परिप्रेक्ष्य के संदर्भ में देखें तो उसमें अनेक समूह, वर्ग, मंडल दिखाई देते हैं। भारतीय समाज में विविध समूह, समुदाय, ज्ञाति, मंडल और आर्थिक वर्ग दिखते हैं। समाज की विभावना किसी निश्चित समूह या समुदाय को निर्देश नहीं करती यह अमूर्त विचार है। जबकि समुदाय, समूह या वर्ग समाज के अलग-अलग घटक हैं।

समुदाय (Community)

ऐतिहासिक रूप से देखें तो मनुष्य ने जब पृथ्वी पर जीवन की शुरुआत की थी तब शिकार पर आधारित भटकता जीवन जीता था। धीरे-धीरे निश्चित स्थल पसंद करके उसने स्थायी आवास वाले जीवन जीने की शुरुआत की। तब से वह स्थल या प्रदेश आधारित समाज जीवन समुदाय में बदला। किसी भी समाज में ऐसे अनेक समुदाय होते हैं। जैसे कि ग्राम समुदाय, नगर समुदाय आदि। भाषा, जाति, व्यवसाय या धर्म के आधार पर बसते समूह जो निश्चित विस्तार में होते हैं।

मेकाईवर और पेज नामक समाजशास्त्रियों के अनुसार ''छोटे या बड़े समूह के सदस्य जब एक ही स्थान पर रहते हों और जीवन के बड़े भाग के हित संतुष्ट करने का प्रयत्न करें तब ऐसे स्थानीय समूह को समुदाय कहते हैं।'' इस तरह समुदाय समाज के अलग-अलग समूहों का एक समूह है। समाजशास्त्रीय रूप में समुदाय की संकल्पना स्पष्ट करने में उसके लक्षणों की जाँच करें तो (1) जनसंख्या (2) भौगोलिक प्रदेश (3) समुदाय के सदस्यों के परस्परावलंबन (4) सामूहिक जीवन में विकसित समान स्तरों-मूल्यों पर आधारित प्रवृत्ति का संकलन (5) सामुदायिक भावना ।

आधुनिक समय में भौगोलिक गतिशीलता, परिवहन और संचार के साधन तथा औद्योगीकरण, शहरीकरण और वैश्वीकरण की प्रक्रिया एवं आधुनिक तकनीकि के विकास के कारण समुदाय के सदस्यों के संबंध समुदाय तक मर्यादित न रहने से वैश्विक स्तर पर गतिशील बना है। इस तरह व्यापक समाज के साथ जुड़ाव बढ़ा है । किंग्स्ले डेविस समुदाय के दो मुख्य मापदंड दर्शाते हैं : (1) प्रादेशिक निकटता : एक-दूसरे के नजदीक रहने से लोग निकटता का अनुभव करते हैं। (2) सामाजिक संपूर्णता : व्यक्तियों का बड़े भाग का जीवन समुदाय की मर्यादा में ही जीता है।

सामाजिक समुदाय (Social Groups)

मानव समाज के उद्भव से लेकर वर्तमान समय को देखें तो मनुष्य हमेशा सामूहिक जीवन जीता है। मनुष्य प्राथमिक अवस्था में शिकार की प्रवृत्ति समूह में करता था। सामान्य रूप से मनुष्य एकांत में या अकेला नहीं रहता वह समूह में ही जीता है, और विकसित होता है। परिवार, मित्र समूह, पड़ोस समूह, राजकीय, धार्मिक या सामाजिक समूहों में व्यक्ति अपनी अलग-अलग आवश्यकताओं की परिपूर्ति के लिए सामूहिक भागीदारी करता है। दैनिक प्रवृत्तियों का संतोष समूह में प्राप्त करना यह मानव समाज की विशेषता है। जैसे कि शिक्षा की आवश्यकता की पूर्ति के लिए व्यक्ति साथ में कक्षा में शिक्षा लेतें हैं। इस प्रकार व्यक्ति किसी भी समूह का सदस्य बनकर अपनी दैनिक प्रवृत्तियां करता है।

संक्षिप्त में समान प्रकार के होने की समानता और सामूहिक उद्देश्य तथा उद्देश्यों की पूर्ति के लिए एक-दूसरे के साथ आंतरक्रिया में आनेवाले व्यक्तियों को समूह कहते हैं। जैसे कि मित्र समूह, रिस्तेदार समूह, वर्ग समूह, जाति, मंडल, धर्मस्थान में इकट्ठे होकर उपासना करते लोग आदि । समाजशास्त्रीय रूप से सामाजिक समूह के लक्षण दर्शाए गये हैं —

(1) दो या अधिक व्यक्ति : मित्रवर्ग, खेल का दल

(2) समान होने की जागरूकता : एक ही जाति, धर्म या कौम के सदस्य

(3) साझा उद्देश्य या हेतु : प्रेक्षक समूह

(4) सामाजिक आंतर क्रिया : स्वच्छता अभियान के अंतर्गत काम करते लोग।

मानव समाज अनेक समूहों का बना हुआ है। मनुष्य सामाजिक जीवन का निर्माण और सहजीवन का क्षेत्र समूह निर्धारित करते हैं। इस संदर्भ में निम्नानुसार समाज में समूह दिखाई देते हैं :

मंडल (Association) : मंडल एक ऐसा सामाजिक समूह है जिसमें सामूहिक हित की पूर्ति के लिए किसी निश्चित संगठित प्रयास से परस्पर आंतर क्रिया करते हैं। प्रत्येक समूह के मंडल के स्तर प्रमाण में अलग-अलग होते हैं। मंडल में व्यक्तियों का पद और भूमिका निश्चित की जाती है। उसके अनुसार सदस्यों के बीच आंतरक्रिया होती है। मजदूर मंडल, युवक मंडल, महिला मंडल, व्यापारी मंडल, शिक्षक मंडल इसके दृष्टांत हैं।

वर्ग (Class) : समाज में आर्थिक आधार पर लोग अलग-अलग विभागों में बँटे होते हैं। जैसे कि उच्च (श्रीमंत), मध्यम वर्ग और गरीब वर्ग। जिनका उनके आर्थिक वर्ग आधारित समान सामाजिक दर्जा (स्थान) होता है।

मनुष्य जब प्राथमिक अवस्था में था तब आर्थिक साधनों की मालिकी के आधार पर वर्ग नहीं थे। समाज में जटिलता बढ़ने से सामंत-गुलाम, व्यावसायिक वर्ग (Guild) और औद्योगिक समाज में पूँजीपति और श्रमजीवी वर्गों का उद्भव हुआ। समाज की रचना और कार्य में परिवर्तन आता रहता है, इसी तरह वर्गों के स्वरूप में परिवर्तन आता रहता है। सामाजिक वर्ग के संदर्भ में कार्ल मार्क्स का वर्ग का सिद्धांत प्रसिद्ध है। मेक्स वेबर सामाजिक वर्ग को स्तर समूह कहते हैं।

जाति (Caste) : वैश्विक स्तर पर जाति समूह मात्र भारत में और विशेष तौर से हिन्दू धर्म में ही दिखाई देता है। रिजलें के मतानुसार भारत में आज भी 3000 से अधिक जातियाँ हैं। एम. एन. श्रीनिवास के अनुसार भारत में जातियाँ हिन्दू धर्म (समाज) की वर्णव्यवस्था में से उत्पन्न हुई हैं। हिन्दुओं में प्रत्येक व्यक्ति जन्मजात से ही जाति की सदस्यता अपने आप मिल जाती है। प्रत्येक जाति के सामाजिक व्यवहार विवाह, सगाई संबंध, खान-पान के तरीके विशिष्ट होते हैं। प्रत्येक जाति समूह के अपने निश्चित व्यवसाय होते हैं। आज भी अनेक जातियाँ अपने परंपरागत व्यवसाय करते हैं। जाति आधारित

कोटिक्रम दिखाई देते हैं। उच्च जाति, मध्यम जाति और निम्न जाति। हिन्दू धर्म जहाँ प्रचलित है, ऐसे देशों में भी जाति समूह देखने में आते हैं। जबकि वर्तमान समय में जाति का परंपरागत स्वरूप बहुत बदल गया है।

सामाजिक स्तर तथा भूमिका (Social Status and Role)

वर्तमान जटिल समाज में लोगों के बीच अधिकांश आंतरक्रिया व्यक्ति के स्तर को ध्यान में रखकर होती है। विद्यालय या महाविद्यालय में प्रवेश प्राप्त करने वाले व्यक्ति, विद्यार्थी, शिक्षक, अध्यापक के रूप में आंतरक्रिया करते हैं जो व्यक्ति के स्तर या भूमिका के संदर्भ में होती है।

सामाजिक स्तर अर्थ और व्याख्या

''सामाजिक स्तर अर्थात् एक निश्चित समय में एक निश्चित व्यवस्था में व्यक्ति का सामाजिक स्थान।''

सामाजिक स्तर व्यक्ति को अन्य व्यक्तियों के संबंध में किस तरह का व्यवहार करना है, यह दर्शाता है। समाज में किसी भी प्रकार का समूह, मंडल, वर्ग या जाति में व्यक्ति किसी न किसी प्रकार का स्तर रखता है। इस स्तर (पद) के अनुरूप व्यक्ति को भूमिका निभानी चाहिए ऐसी अपेक्षा इस समूह के सदस्य उससे रखते हैं। इस अर्थ में स्तर व्यक्ति की स्थित्यात्मक परिस्थिति का उल्लेख करता है। इस परिस्थिति में व्यक्ति जो व्यवहार करता है, वह उसकी भूमिका है।

व्यक्ति के उपरांत समूहों का भी निश्चित सामाजिक स्थान या स्तर होता है। प्रत्येक स्थान के कार्य, अधिकार और कर्तव्य समूह के स्तर द्वारा निश्चित होते हैं। सामाजिक भूमिका स्तर का व्यवहारलक्षी पक्ष है। उदाहरण, डॉक्टर का स्तर रखने वाला व्यक्ति रोगी के रोग का निदान कर आवश्यक मार्गदर्शन और उपचार देता है। तब वह अपनी भूमिका निभाता है, ऐसा कह सकते हैं। इस तरह स्तर और भूमिका एक-दूसरे से संलग्न (जुड़ी) होती है।

प्रत्येक स्तर से साथ कम या अधिक मात्रा में सत्ता जुड़ी होती है। जैसे कि विद्यालय में प्रधानाचार्य का पद प्राप्त करनेवाले व्यक्ति के पास अनेक सत्ताएँ और उनका अमल करने के तरीके होते हैं। जबकि विद्यालय के चौकीदार और चपरासी के पास विशेष सत्ता नहीं होती।

प्राप्त करने के तरीके के आधार पर सामाजिक स्तर (पद) के दो प्रकार हैं :

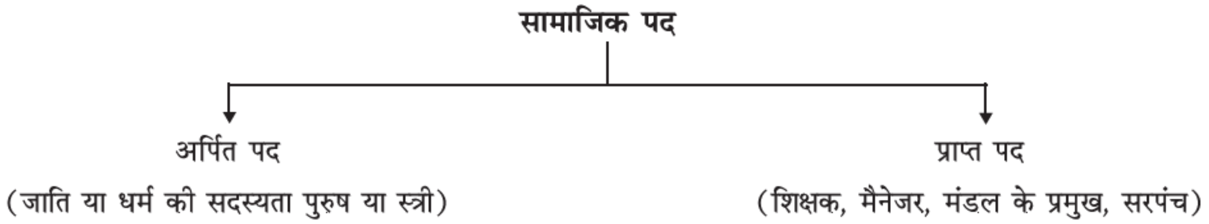

(1) अर्पित पद : समाज में व्यक्ति को जन्म से प्राप्त होने वाले पद को अर्पित पद कहते हैं। इस प्रकार के पद की प्राप्ति व्यक्ति की पसंदगी या इच्छा पर निर्भर नहीं है। क्योंकि जन्म से स्त्री या पुरुष को मिलता पद, व्यक्ति या देश, परिवार, जाति या धर्म में जन्म से है, उसका पद जन्म के साथ ही अपने-आप मिल जाता है। अनेक समूहों में समूह के बुजुर्ग या भूतकाल के ग्रामीण समाज के मुखिया का पद वंश-परंपरागत रूप से अपने आप मिलता था। इस प्रकार, जन्म या वंशपरंपरागत रूप से पद समाज द्वारा अपनेआप आता है, उसे अर्पित पद कहते हैं।

(2) प्राप्त पद : व्यक्ति की पसंदगी, इच्छा, सूझ-बूझ, शिक्षण और प्रशिक्षण द्वारा समाज में जो स्थान मिलता है, उसे प्राप्त पद कहते हैं। प्राप्त पद हासिल करने के लिए व्यक्ति को प्रयत्न करने पड़ते हैं। जैसे कि सूझ-बूझ, शिक्षण, प्रशिक्षण द्वारा कोई भी व्यक्ति शिक्षक, डॉक्टर, मैनेजर, वकील आदि पद प्राप्त कर सकता है। प्राप्त पद की स्पर्धा की प्रक्रिया द्वारा व्यक्ति अधिक गतिशील बनता है। जैसे की भारतीय लोकसभा की प्रथम महिला स्पीकर मीराकुमार, जो समाज के ऐसे समूह में से आई थी जो समान स्तर से वंचित होने पर भी उन्होंने अपने उच्च शिक्षण और प्रशिक्षण द्वारा स्पीकर का पद प्राप्त किया। अधिकांश समाजों में अर्पित और प्राप्त दोनों प्रकार के पद दिखाई देते हैं।

सामाजिक मानदंड (Social Norms)

मानव समाज में दो व्यक्तियों के सामाजिक समूह से शुरू करके विशाल समाज के व्यवहार के लिए व्यवहार को मार्गदर्शन देने वाले सामाजिक मानदंड अवश्य होते हैं। सामाजिक मानदंडों के कारण ही समग्र समाजव्यवस्था का नियंत्रण और रचना होती रहती है।

सामाजिक मानदंड का अर्थ

''सामाजिक मानदंड अर्थात् सामाजिक जीवन की भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में व्यक्तियों द्वारा किए जानेवाले व्यवहार की योग्यता या अयोग्यता निश्चित करते सामाजिक नियम।''

सामान्य रूप से वैश्विक मूल्यों में से मानदंड का निष्पन्न होता है। जैसे कि मानवतावाद एक मूल्य है, जबकि वर्ण, लिंग या जाति के आधार पर मनुष्यों के बीच अधिकारों का भेदभाव करने के विरोध का कानून एक मानदंड है। सभी सामाजिक मानदंडों के पीछे समाज की सहमति होती है।

सामान्य रूप से सभी मानदंडों की मर्यादा में रहकर ही समाज के सदस्य अपने उद्देश्य या आवश्यकताएँ प्राप्त करते हैं। मानदंडों के पालन के बदले व्यक्ति को योग्य बदला, मान, प्रतिष्ठा मिलती है जबकि मानदंड भंग के बदले में दण्ड, मानहानि होती है। समाज द्वारा सर्जित सभी प्रकार के मानदंड व्यक्ति का सामाजिक नियंत्रण करते हैं। समाज के सदस्य मानदंडों का उचित रूप से पालन करते हैं तो वे समाज व्यवस्था में अपनी प्रगति करके विकास कर सकते हैं। यदि समाज में मानदंड भंग करनेवाले व्यक्तियों का प्रमाण बढ़ेगा तो समाज में अव्यवस्था और अंधाधुंधी (अव्यवस्था) उत्पन्न होती है। समाज के सभी मानदंड या नियम समाज के सभी व्यक्तियों या वर्गों को सर्वस्वीकृत हों, यह जरूरी नहीं। कुछ व्यक्तियों या समूहों के लिए लाभदायक होते हैं तो अन्य वर्गों या व्यक्तियों के लिए हानिकारक हो सकते हैं। उपर्युक्त चर्चा उपरांत सामाजिक मानदंड के लक्षण देखें।

सामाजिक मानदंड के लक्षण

(1) सामाजिक मानदंड के उद्भव का तरीका : समाज में लोकरीति में रिवाज, परंरपरा जैसे मानदंडों के उद्भव के लिए समाज कोई खास प्रकार का समान आयोजन नहीं करता है। स्वाभाविक क्रम में चलते वर्तन-व्यवहार में से इन मानदंडों का उद्भव होता है। विशाल प्रशासनिक इकाई, बैंक, शैक्षणिक संस्था के नियमों या राज्य के कानून ऐसे मानदंड है जिनका उद्भव वैचारिक आयोजन द्वारा होता रहता है। जैसे कि देश में संविधान को ध्यान में रखकर, राज्य की विधानसभा या लोकसभा जैसी सरकारी, धंधाकीय संस्थाओं द्वारा विचारपूर्वक और आयोजनपूर्वक निर्माण करती है। उदाहरण- स्त्री-भ्रूण हत्या, दहेज आदि का कानून।

(2) सामाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा सीखते हैं : सामाजिक मानदंड मनुष्य को जैविक रूप से विरासत में अपनेआप नहीं मिलते परंतु व्यक्ति जिस परिवार में जन्म लेता है, और पोषित होता है उसमें से तथा उसके आस-पास के अन्य व्यक्तियों, मित्रों, सामाजिक वातावरण द्वारा होते सामाजीकरण में से सामाजिक मानदंड की जानकारी और शिक्षण प्राप्त करता है, और उससे सीखता है। परिवार, मित्र, पड़ोस समूह, विद्यालय, संचार के माध्यम व्यक्ति को मानदंड की जानकारी और उसका पालन किस तरह करना है, यह सिखाते हैं। बचपन के खेल वर्गों द्वारा खेल के दरम्यान खेल के नियमों के पालन द्वारा मानदंड आत्मसात होता है।

(3) सांस्कृतिक मूल्यों के साथ संबंध : भिन्न-भिन्न समाज के तथा एक ही समाज के अलग-अलग समय के सांस्कृतिक मूल्यों में भिन्नता होती है। जैसे कि हिन्दू समाज में स्त्री-पुरुष के संबंधों पर प्रतिबंध (मर्यादा) लगाते मानदंड हैं, जबकि आदिवासियों में उससे संबंधित रिवाज छूट-छाट युक्त स्वरूप में हैं। पहले के समय में पुत्र-पुत्री के विवाह को निश्चित करने का अधिकार मात्र माता-पिता को था, जबकि वर्तमान में वकील या माता-पिता संतानों की विवाह संबंध में इच्छा और पसंदगी को महत्त्व देते हैं।

(4) सार्वत्रिकता और वैविध्य : मनुष्य-मनुष्य के बीच सामाजिक संबंध संभव बनाने के लिए प्रत्येक समय के समाज में सामाजिक संबंध संभव बनाने के लिए प्रत्येक समय के समाज में सामाजिक मानदंड सार्वत्रिक रूप से दिखाई देते हैं। उनमें विविधता भी होती है। जैसे कि रिवाज, लोकनीति, फैशन, शिष्टाचार, राज्य के कानून आदि विविधतालक्षी मानदंड हैं।

(5) व्यवहार का मूल्यांकन तथा दंड पद्धति का स्वरूप : सामाजिक मानदंडों द्वारा व्यक्ति के व्यवहार का योग्य अथवा अयोग्य रूप से मूल्यांकन होता है। प्रत्येक मानदंड के साथ उसे भंग करने के बदले विशिष्ट सजा की पद्धति होती है। लोकरीति जैसे मानदंडों के भंग के लिए हल्की या अनौपचारिक सजा होती है। जबकि कानून जैसे मानदंड के भंग के लिए अदालत द्वारा औपचारिक (दंड़, जेल, फाँसी) स्वरूप में सजा होती है।

समाज की मानदंडात्मक व्यवस्था के कारण उसके सदस्यों के बीच संपर्क व्यवहार और समाज में स्थिरता और व्यवस्था दिखाई देती है।

सामाजिक नियंत्रण (Social Control)

सभी मानव समाज कम-ज्यादा अंशों में गतिशील और परिवर्तनशील होता है। समाज के भिन्न-भिन्न भागों में परिवर्तन आने के उपरांत समाज का बुनियादी स्वरूप लंबे समय तक बना रहता है। सामाजिक जीवन की आवश्यकताएँ और सामाजिक संबंधों की व्यवस्था तभी संभव बन सकती है जब समाज के सदस्य समाज स्वीकृत मानदंडों के अनुसार व्यवहार करें और उसके लिए समाज में सामाजिक नियंत्रण की पद्धतियाँ होती हैं। मेकाईवर और पेज बताते हैं कि 'समग्र समाजव्यवस्था को संगठित रखने और टिकाए रखने का तरीका अर्थात् सामाजिक नियंत्रण।' सामाजिक नियंत्रण व्यंग्यात्मक मजाक स्वरूप मृत्यु तक दिखाई देता है।

''समाज में सामाजिक मानदंड के विरुद्ध व्यवहार को रोकने के तरीके या साधन सामाजिक नियंत्रण दर्शाते हैं।'' उनके लक्षण देखें।

सामाजिक नियंत्रण के लक्षण

(1) सार्वत्रिकता : मानव समाज में सार्वत्रिक रूप से सामाजिक नियंत्रण पाया जाता है। जबकि नियंत्रण के साधन, और पद्धति समाज-समाज और समय-समय में अलग होती हैं; परंतु सामाजिक नियंत्रण बिना समाज संभव नहीं।

(2) सामाजिक नियंत्रण एक प्रक्रिया के रूप में : सामाजिक नियंत्रण सामाजिक आंतरक्रिया का परिणाम है। सामाजीकरण की प्रक्रिया के दरम्यान समाज के मानदंड व्यक्ति को सिखाए और उनका अंतरीकरण किया जाता है। इस तरह सामाजिक नियंत्रण सामाजिक मानदंडों के अनुसार व्यक्ति के व्यवहार निर्माण की प्रक्रिया है।

(3) विविधता : प्रत्येक समाज में नियंत्रण की पद्धतियाँ भी अलग-अलग होती हैं।

नियंत्रण की पद्धतियाँ

- विशाल समुदाय → कम मात्रा में औपचारिक नियंत्रण (कानून, व्यावसायिक समूह, पुलिस, न्यायतंत्र)
- छोटे समुदाय → कम मात्रा में अनौपचारिक नियंत्रण (खेल दल, परिवार, जाति टिप्पणी, मजाक स्वरूप)

लोकतांत्रिक और तानाशाही समाजों में सामाजिक नियंत्रण की पद्धतियाँ अलग होती हैं।

एक सामाजिक विज्ञान के रूप में समाजशास्त्र के अपने बुनियादी विचार हैं। इस प्रकरण में हमने कई बुनियादी विचारों अथवा विभावनाओं का परिचय प्राप्त किया। समाज, समुदाय, सामाजिक पद और भूमिका, मानदंड और सामाजिक नियंत्रण जैसी संकत्पनाओं और उनके लक्षणों के विषय में हमने जाना। इन संकल्पनाओं की विगतें आप समझेंगे तो समाजशास्त्र विषय का महत्त्व और उपयोग अवश्य समझेंगे। इसके उपरांत समाज व्यवस्था और समाज के रचनातंत्र के अब आगे की इकाई में समझने का प्रयत्न करेंगे।

स्वाध्याय

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर विस्तार से दीजिए :

(1) समाज का अर्थ समझाकर उसके लक्षण बताइए।

(2) सामाजिक स्तर (पद) की विभावना देकर सामाजिक स्तर के प्रकार स्पष्ट कीजिए।

(3) सामाजिक मनदंड की संकल्पना समझाकर उसके लक्षणों का वर्णन कीजिए।

2. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर मुद्दासर दीजिए :

(1) मानव समाज और मानवेत्तर समाज के बीच संबंध स्पष्ट कीजिए।

(2) समुदाय की संकल्पना समझाइए।

(3) 'भारत की जाति व्यवस्था' पर टिप्पणी लिखिए।

(4) सामाजिक नियंत्रण की व्याख्या और लक्षण समझाइए।

3. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दीजिए :

(1) संकल्पना या विभावना अर्थात् क्या ?

(2) समाजशास्त्रीय संदर्भ में सामाजिक समूह के लक्षण समझाइए।

(3) मंडल की विभावना स्पष्ट कीजिए।

(4) सामाजिक स्तर और भूमिका की संकल्पना समझाइए।

4. निम्नलिखित प्रश्नों के एक-एक वाक्य में उत्तर दीजिए :

(1) संकल्पनाएँ समझाइए :

(अ) समाज (ब) समूह (क) सामाजिक मानदंड (ड) सामाजिक वर्ग

(2) सामाजिक नियंत्रण की पद्धतियाँ बताइए।

(3) स्वाभाविक क्रम से चलनेवाले वर्तन-व्यवहारों में से कौन से मानदंड उत्पन्न (उद्‌भव) होते हैं ?

5. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर सही विकल्प चुनकर दीजिए :

(1) समाजशास्त्र कैसा विज्ञान है ?

(अ) भौतिक (ब) सामाजिक (क) ऐतिहासिक (ड) सांस्कृतिक

(2) संकल्पना (विभावना) किन घटनाओं को सूचित करती कैसी रचना है ?

(अ) तार्किक (ब) नियंत्रण (क) अतार्किक (ड) अस्पष्ट

(3) मानव समाज और मानवेतर समाज के बीच किस बात में समानता है ?

(अ) सांस्कृतिक (ब) सामाजिक मानदंड

(क) समूहजीवन (ड) तीनों में से एक भी नहीं

(4) समुदाय के मापदंड किस समाजशास्त्री ने दर्शाए हैं?

(अ) ज्हॉनसन (ब) किंग्सले डेविस (क) ऑगस्त कोंते (ड) इमाइल दुर्खिम

(5) वर्तमान समय में शिक्षक का पद किस प्रकार का पद है?

(अ) अर्पित (ब) प्राप्त

(क) अस्पष्ट (ड) तीनों में से एक भी नहीं

(6) सामाजिक भूमिका स्तर (पद) का कैसा पक्ष है?

(अ) परिवर्तनशील (ब) स्थित्यामक (क) व्यवहारलक्षी (ड) गत्यात्मक

(7) समाज की कैसी व्यवस्था के कारण सदस्यों के बीच संपर्क और समाज में स्थिरता पायी जाती है?

(अ) मानदंड (ब) स्तर (क) वर्ग (ड) भूमिका

(8) हिन्दू समाज की किस व्यवस्था के कारण जाति का उद्‌भव हुआ?

(अ) कोटिक्रम (ब) वर्ग

(क) वर्ण (ड) तीनों में से एक भी नहीं

प्रवृत्ति

- अपने आस-पास के समाज जीवन की विविधता को नोट कीजिए।
- अपने क्षेत्र में किसी स्वैच्छिक संस्था या मंडली की यात्रा करके, उसका लेख तैयार कीजिए।
- सामाजिक नियंत्रण की औपचारिक और अनौपचारिक संस्थाओं की सूची तैयार कीजिए।
- परिवार संस्था और शैक्षणिक संस्था में दिखाई देनेवाले अलग-अलग स्तर (पदों) का चार्ट तैयार कीजिए।

●

3 सामाजिक व्यवस्था और सामाजिक रचनातंत्र

प्रस्तावना

आगे की इकाई में हमने समाजशास्त्र की अनेक विभावनाओं की जानकारी प्राप्त की थी। विशाल मानव समाज में जहाँ-जहाँ नजर डालें वहाँ मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए व्यवस्थाएँ और उपव्यवस्थाएँ दिखाई देती हैं। जैसे कि परिवार जैसी संस्था द्वारा बालक के जन्म, रक्षण, पोषण और संस्कार सिंचन के लिए बनाई गई व्यवस्था। इसके उपरांत शिक्षण संस्था, शैक्षणिक आवश्यकता पूरी करती है। विवाह, जाति, आर्थिक, धार्मिक आदि संस्थाएँ मनुष्य की आवश्यकताएँ संतुष्ट करनेवाली सामाजिक व्यवस्थाएँ हैं।

किसी भी रचना का अलग-अलग भागों में क्रमबद्ध गठन होता है। जैसे कि मोटरकार रचना उसके मशीन, पहिए, स्टियरिंग, सीट, ग्लास जैसे विविध भागों के योग से बनी है। ऐसे तो कोई भी भौतिक वस्तु मकान, पंखा, टेबल, कुर्सी आदि विविध भागों के जोड़ से बनी रचना है। इसी तरह विद्यालय, प्रधानाचार्य, शिक्षक, विद्यार्थी, लिपिक, चपरासी आदि सामाजिक स्थानों के जुड़ने से बचते हैं। परिवार भी पति-पत्नी, माता-पिता, भाई-बहिन आदि के बीच सामाजिक पद योग से बनी रचना है। इसी तरह कॉलेज, बैंक, क्रिकेट दल, जाति, ग्राम वगैरह सामाजिक रचनाएँ हैं।

इस तरह सामाजिक व्यवस्था और सामाजिक रचना दोनों की संकल्पना एक-दूसरे के साथ गहन रूप से संलग्न हैं। सामाजिक व्यवस्था के बिना सामाजिक कार्य संभव नहीं हो और सामाजिक कार्य सामाजिक रचना के बिना संभव नहीं। संक्षिप्त में सामाजिक व्यवस्था और सामाजिक रचना एक-दूसरे के पूरक हैं। सामाजिक व्यवस्था और सामाजिक रचनातंत्र को क्रमबद्ध समझने के लिए अनेक समाजशास्त्रियों ने बुनियादी विचार दिऐ हैं, जिनके आधार पर इन दोनों विचारों की समझ (जानकारी) प्राप्त करें।

सामाजिक व्यवस्था और सामाजिक रचनातंत्र

सामाजिक व्यवस्था और सामाजिक रचनातंत्र को समझने के लिए समाजशास्त्री हर्बट स्पेन्सर ने मानव समाज और शरीर की तुलना की; ब्रेनिस्लो मेलिनोवस्की ने मानव की आवश्यकता आधारित रचनातंत्र की प्रस्तुती की है, तो टाल्कोट पार्सन्स ने मानवक्रिया व्यवस्था को चार उप व्यवस्था के संदर्भ में समझाया है। हम सर्वप्रथम सामाजिक व्यवस्था की जानकारी प्राप्त करें।

सामाजिक व्यवस्था की परिभाषा

जिस तरह मानव शरीर के अलग-अलग भाग परस्पर कार्यात्मक संबंधों से जुड़कर एक व्यवस्था बनी है, वैसे ही सामाजिक व्यवस्था भी कार्यात्मक संबंधों से जुड़े दो या उससे अधिक इकाइयों से बनी व्यवस्था होती है।

टाल्कोट पार्सन्स सामाजिक व्यवस्था की परिभाषा देते हुए बताते है कि, ''सामाजिक व्यवस्था अर्थात् एक-दूसरे के साथ कार्यात्मक संबंधों में रहे भागों द्वारा बना एक जटिल संकुल।''

सोरोकिन सामाजिक व्यवस्था की परिभाषा देते हुए बताते हैं कि, 'सामाजिक व्यवस्था एक संगठित समूह है कि जो अपने सदस्यों के अधिकारों, कर्तव्यों, सामाजिक पदों, कार्यों, भूमिकाओं तथा परस्पर व्यवहार और समूह के बाहर के विशाल समाज के सदस्यों के साथ व्यवहार को स्थापित करते सामाजिक मानदंडों का संकुल रखती है।'

संक्षेप में कह सकते हैं कि सामाजिक स्थान या पद में रहकर भूमिका निभाते व्यक्तियों की आंतरक्रिया की व्यवस्था को सामाजिक व्यवस्था कहते हैं।

सामाजिक व्यवस्था के लक्षण

टाल्कोट पार्सन्स द्वारा दर्शाए सामाजिक व्यवस्था के लक्षण निम्नानुसार हैं :

(1) विभिन्न भागों के बीच परस्परावलंबन : सामाजिक व्यवस्था बनने हेतु कम से कम दो सामाजिक इकाइयों के भागों का जुड़ाव होना आवश्यक है। परिवार में माता-पिता, भाई-बहिन आदि सामाजिक पद जुड़कर एक व्यवस्था बनती है। ये सामाजिक स्थान एक-दूसरे पर परस्पर आधारित हैं। इस तरह, अन्य संस्था या सामाजिक समूह की सामाजिक इकाई का योग सामाजिक व्यवस्था का प्रथम आवश्यक लक्षण है।

(2) सामाजिक व्यवस्था में स्थिरता : मानव समाज की आवश्यकताओं को परिपूर्ण करने के लिए व्यवस्था को लम्बे समय तक स्थिरता धारण करनी पड़ती है। क्योंकि प्रत्येक व्यवस्था अपनी पहले की पहचान बनाने में अनुकूलता साधती है। इस तरह सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन आने के उपरांत मूलभूत सामाजिक व्यवस्था बनी रहती है।

(3) सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन : प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था परिवर्तनशील होती है। यह सामाजिक व्यवस्था एक सीमा तक स्थिर परिवर्तन प्राप्त करती रहती है। तंत्र को अपनी व्यवस्था बनाए रखने के लिए परिवर्तन के साथ अनुकूलता साधना आवश्यक है, जिसमें से परिवर्तन उद्भव होता है।

सामाजिक व्यवस्था के पक्ष

सामाजिक व्यवस्था के पक्ष निम्नानुसार समझ सकते हैं:

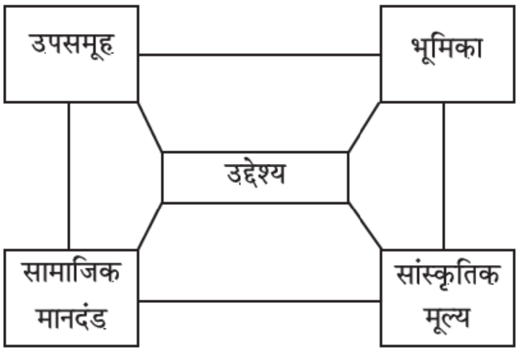

(1) उपसमूह : प्रत्येक समाज में अनेक समूह होते हैं। प्रत्येक समूह सामाजिक आंतरक्रिया की व्यवस्था है। कोई भी क्षेत्रीय समूह एक समूह के हिस्सें के रूप में विकसित होने से उसे उपसमूह या क्षेत्रीय समूह कहा जाता है। व्यक्ति अनेक उपसमूहों में विविध प्रकार के सामाजिक स्थान रखता है। इन स्थानों पर आधारित विविध भूमिका निभाने के लिए आंतरक्रिया करता है। समूह और उपसमूहों के विचार सापेक्ष हैं। आंतरक्रिया की किस व्यवस्था को हम समूह के रूप में जानते हैं, उस पर उपसमूह के विचार का आधार होता है। उदाहरण के तौर पर भारत को एक समूह मानें तो उसके राज्यों – गुजरात, महाराष्ट्र, पंजाब आदि उपसमूह हैं। गुजरात को समूह के रूप में मानें तो उसके विविध जिले उसके उपसमूह हैं। यदि किसी विद्यालय को समूह के रूप में माने तो उसके विद्यार्थी, शिक्षक, प्रशासनिक कर्मचारी, सेवकगण आदि उसके उपसमूह हैं। इस प्रकार समाज के सदस्य अनेक उपसमूहों के विविध पद प्राप्त करते हैं प्रत्येक समूह के विविध स्तर का (पद) कोटिक्रम रचा हुआ होता है।

(2) भूमिका : सामाजिक व्यवस्था में व्यक्ति के विविध स्तर होते हैं। इस स्तर के संदर्भ में सामाजिक मानदंड के अनुसार व्यक्ति जो कार्य करता है उसे भूमिका कहते हैं। जो व्यक्ति के कर्तव्यों का निर्देश करता है। भूमिका यह स्तर (पद) का व्यवहारलक्षी पक्ष है। सामाजिक व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति को विविध उपसमूहों में विविध भूमिका निभानी होती है। जैसे कि, विद्यालय के प्रधानाचार्य विद्यालय का संचालन करता है, शिक्षक पढ़ाते है, विद्यार्थी पढ़ते हैं, प्रशासनिक कर्मचारी कार्यालय का काम करते हैं, चपरासी सेवा का कार्य करते हैं – ये कार्य उनकी भूमिका निभाते हैं।

(3) सामाजिक अवधारणाएँ (मापदंड) : कोई सामाजिक परिस्थिति या सामाजिक रचनातंत्र किसी स्थान के साथ संलग्न समूह व्यवहार की अपेक्षाएँ अर्थात् सामाजिक मानदंड। ये सामाजिक अवधारणाएँ व्यक्ति के व्यवहार को निश्चित करते मापदंड हैं। ये मापदंड ही व्यक्ति के व्यवहार को उचित या अनुचित का स्पष्टीकरण करते हैं। जैसे कि विद्यालय संचालन के नियम, प्रधानाचार्य से लेकर विद्यार्थी तक सभी स्तर के व्यवहार को नियंत्रित करता है। सामाजिक मानदंड सामाजिक जीवन का वातावरण रचते हैं।

(4) सांस्कृतिक मूल्य : सामाजिक व्यवस्था में व्यक्ति जो व्यवहार करता है उसका मूल्यांकन सांस्कृतिक मूल्यों द्वारा होता है। सांस्कृतिक मूल्यों के पीछे समूह का बल होता है। इस उपरांत सामाजिक व्यवस्था में व्यक्ति जो स्तर रखता है उसका मूल्यांकन भी सांस्कृतिक मूल्यों द्वारा होता है। जैसे कि विद्यालय के प्रधानाचार्य को प्रामाणिकता और पारदर्शकता से विद्यालय का संचालन करना, शिक्षकों को निष्ठापूर्वक कार्य करना, विद्यार्थियों का नम्रता से व्यवहार आदि सांस्कृतिक मूल्यों के उदाहरण मान सकते हैं। सामाजिक सांस्कृतिक मूल्यों को उच्च स्तर के सामाजिक मानदंड के रूप में भी जान सकते है।

उद्देश्य (ध्येय) : उपर्युक्त चारों पक्षों द्वारा सामाजिक व्यवस्था अपना ध्येय संतुष्ट करती है। ध्येय यह प्राप्त करने की प्रक्रिया है। मनुष्य की बुनियादी और गौण आवश्यकताओं को संतुष्ट करने के लिए परिवार, विवाह, अर्थ, राज्य, शिक्षा और धर्म आदि संस्थाएँ अस्तित्व में आयी हैं। इन प्रत्येक व्यवस्था (संस्था) के एक या अनेक ध्येय होते हैं। ऐसे सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु समाजव्यवस्था गतिशील होती हैं।

इस प्रकार सामाजिक व्यवस्था के पक्ष पारस्परिक रूप से संलग्न हैं। किसी एक पक्ष में परिवर्तन आते ही अंशतः या अधिक प्रभाव सामाजिक व्यवस्थातंत्र पर होता है।

सामाजिक रचनातंत्र की परिभाषा

सामाजिक व्यवस्था के साथ घनिष्ठ संबंध रखता और उस पर आधारित सामाजिक रचनातंत्र को समझें उससे पहले रचना की संकल्पना समझेंगे।

रचना अर्थात् एक दूसरे के साथ संलग्न भाग अंगों की व्यवस्थित जमावट, जिससे समग्र ढांचा तैयार होता है। उदाहरतया: घर एक भौतिक रचना है, क्योंकि ईटें, रेती, खपरे, सिमेन्ट, खिड़कियाँ-दरवाजे आदि व्यवस्थित जमावट से तैयार हुआ ढाँचा है। इसी तरह कक्षा में स्टाफ रूप, लेबोरेटरी, लाईब्रेरी, ऑफिस, प्रार्थनासभा आदि की जमावट (गठन) से विद्यालय या महाविद्यालय की रचना होती है।

रोबर्ट मर्टन के मतानुसार ''सामाजिक रचनातंत्र अर्थात् स्तर, भूमिका और मापदंडों का संकुल।''

विद्युत जोशी – 'समाज में व्यक्ति स्तर (पद) रखते हैं। इस स्तर पर ही भूमिका निभाता है। यह भूमिका कुछ निश्चित संबंधों में और कुछ परिस्थितियों में निभाता है। इस प्रकार भूमिका व्यवस्थित सामाजिक संबंधों का ताना-बाना तैयार करता है, जिसे सामाजिक रचना कहा जाता है।'

इस प्रकार सामाजिक ढाँचा एक अमूर्त घटना हैं। इसकी इकाईयों में समूह, संस्था, संगठन और मंडलों का समावेश होता हैं। प्रत्येक समाज में व्यक्ति को एक-दूसरे से जोड़ने के लिए विशेष संस्थाकीय प्रणाली विकसित की गयी होती है। व्यक्ति जब सामाजिक स्तर से एक-दूसरे से जुड़ते हैं, तब वह सामाजिक ढाँचे (संरचना) में रूपांतरित होती है। उदाहरण – परिवार एक सामाजिक रचना है, जिसमें माता-पिता, पति-पत्नी, पुत्र-पुत्री के संबंध व्यवस्थित रूप से गठित होते हैं। इसी प्रकार ग्राम समुदाय एक ऐसी रचना है कि जिसमें विविध जातियों, उपजातियों का समावेश होता है।

सामाजिक रचनातंत्र के लक्षण

(1) सामाजिक स्तरों का समूह : स्तरों का समूह यह सामाजिक रचनातंत्र का प्रथम और महत्त्वपूर्ण लक्षण है। कोई भी रचनातंत्र विविध स्तरों से ही अस्तित्व में आता है। समूह या संस्थाकीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए ऐसे विविध स्तर होने आवश्यक हैं। अलग-अलग स्तरों में श्रमविभाजन द्वारा ही समूह या संस्था ध्येय प्राप्त कर सकती है। उदाहरण - प्रधानाचार्य, शिक्षक, विद्यार्थी, लिपिक, चपरासी आदि स्तरों से विद्यालय की रचना टिकी रहती है।

(2) सामाजिक भूमिकाओं का समूह : सामाजिक भूमिका यह सामाजिक स्तर का व्यवहारलक्षी पक्ष है। स्तर और भूमिका एक सिक्के के दो पहलू हैं। किसी भी तंत्रप्रथा की आवश्यकताओं को पूर्ण करने या उद्देश्य प्राप्ति के लिए स्तर अनुसार भूमिका निभानी पड़ती है। उदाहरण - प्रधानाचार्य का कार्य विद्यालय का संचालन करना, शिक्षक का शिक्षण कार्य करना, लिपिक का प्रशासनिक कार्य और विद्यार्थी का अध्ययन कार्य करना व्यक्ति की भूमिका निभाना होता है।

(3) सामाजिक मानदंड : सामाजिक रचनातंत्र को कार्यान्वित रखने के लिए सामाजिक मानदंड होना भी आवश्यक है। मानदंड व्यक्ति या समूह को स्तरानुसार किस तरह भूमिका निभानी है उस संबंधी मार्गदर्शन देते हैं।

सामाजिक मानदंडों के अभाव में समाज में अराजकता उत्पन्न होती है। समग्रतंत्र व्यवस्था बिगड़ जाती है। उदाहरण : विद्यालय में शिक्षक पद हेतु निश्चित योग्यता होना आवश्यक है। इसी तरह विद्यालय में प्रवेश, परीक्षा और पाठ्यक्रम से जुड़े मानदंड न हों तो 'शिक्षण' का उद्देश्य पूर्ण करने में अवरोध उत्पन्न होता है।

सामाजिक रचनातंत्र का AGIL मॉडल

समाजशास्त्री टाल्कोट द्वारा दिए गए सामाजिक रचनातंत्र के मॉडल को समाजव्यवस्था की कार्यात्मक आवश्यकता के रूप में पहचाना जाता है। किसी भी सामाजिक व्यवस्था को टिके रहना हो तो अलग-अलग चार कार्यात्मक आवश्यकताओं को पूरी करनी चाहिए। इन चार आवश्यकताओं को निम्न प्रकार समझ सकते हैं:

(1) अनुकूलन (Adapatation) (2) उद्देश्य प्राप्ति (Goal attainment) (3) एकीकरण (Integration) (4) अत्यक्त स्वरूप का रखरखाव और तनाव प्रबंधन (Latent pattern maintenance and tension management).

अनुकूलन (A) — उद्देश्य प्राप्ति (G)

अर्थ व्यवस्था	राज्य व्यवस्था
शैक्षणिक व्यवस्था धार्मिक व्यवस्था पारिवारिक व्यवस्था	कानून व्यवस्था

रचना को बनाए रखना और समस्या निवारण (L) — सुग्रथन (I)

(1) अनुकूलन (Adapatation) : किसी भी समाज को टिकाए रहने और भौतिक आवश्यकताओं को संतुष्ट करने के लिए भौतिक वातावरण के साथ अनुकूलता साधना अनिवार्य है। भोजन और आवास मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताएँ हैं। इन आवश्यकताओं को पूरी करने के लिए समाज में उत्पादन और वितरण की व्यवस्था उत्पन्न होती है। समाज यह आवश्यकता अर्थव्यवस्था संतुष्ट करती है। इसी प्रकार आर्थिक व्यवस्था द्वारा ही समाज में अनुकूलन स्थापित होता है।

(2) उद्देश्य प्राप्ति (Goal attainment) : प्रत्येक समाज को यदि टिके रहना हो तो कोई निश्चित उद्देश्य तय करना पड़ता है। प्रत्येक निश्चित किए गए उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए प्रत्येक सामाजिक तंत्र में निर्णय लेने

वाली संस्था अर्थात् राज्यव्यवस्था होती हैं। उद्देश्य निश्चित करने के कार्य में राज्यव्यवस्था महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। राज्य व्यवस्था नीतिनिर्माण करके उसका अमल करने का कार्य करती है। अनुकूलन की समस्या अर्थात् जितनी मात्रा में हल हो सके उतनी ही मात्रा में उद्देश्य प्राप्ति आसान होता है।

(3) एकीकरण (Integration) : प्रत्येक समाज को अपना-अपना अस्तित्त्व बनाए रखना हो तो उसे अपने आंतरिक भागों के बीच का संकलन और नियंत्रण सुरक्षित कर लेना चाहिए। सामाजिक व्यवस्था में कानूनी संस्थाएँ और अदालतें सामाजिक मानदंडों के अमल द्वारा इस आवश्यकता को संतुष्ट करते हैं। इस सामाजिक तंत्र के सभी सदस्य परस्पर 'एक दूसरे' तथा समग्र तंत्र के प्रति वफादार रहना आवश्यक है। वफादारी, सहयोग, संकलन और कार्यदक्षता द्वारा सामाजिक व्यवस्था में एकत्रीकरण बना रहता है।

(4) अव्यक्त स्वरूप का रख-रखाव और तनाव प्रबंधन (Latent pattern maintenance and tension management) : किसी भी समाज को निश्चित व्यवस्था अथवा मानदंड के आधार पर अपना अस्तित्त्व बनाए रखना पड़ता है। इसलिए उसे विविध समस्याएँ हल करनी पड़ती हैं। रचना के रख रखाव के लिए समाज के सदस्यों को अपने पद के अनुरूप भूमिका निभानी चाहिए। सदस्य अपनी भूमिका अच्छी तरह निभा सकें इसलिए उन्हें प्रोत्साहित करना चाहिए।

प्रभावकारी भूमिका निभाते समय अनेक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। इसके अलावा कई बार व्यक्तियों के मन में तनाव भी उत्पन्न होता है, जो उन्हें संघर्ष की तरफ ले जाता है। इससे समाज को आंतरिक तनाव और संघर्ष के निवारण के लिए आवश्यक मार्ग ढूंढ लेना चाहिए। यह कार्य कुटुंब संस्था द्वारा होता है। तनाव निवारण की समस्या हल करने के कार्य में परिवार के साथ धर्म और शिक्षण जैसी संस्थाओं का समावेश होता है।

इस प्रकार पार्सन्स का (AGIL) मॉडल सामाजिक रचनातंत्र की चार कार्यात्मक समस्या या आवश्यकताएँ हल करता है, तथा सामाजिक संतुलन स्थापित करता है। यह संतुलन स्थापित करने के लिए अलग-अलग क्रियातंत्र कार्य करता है, जिसमें सामाजीकरण महत्त्वपूर्ण क्रियातंत्र है। सामाजीकरण के क्रियातंत्र द्वारा सामाजिक मूल्यों का आत्मसातीकरण होता है और सामाजिक नियंत्रण की प्रक्रियाएँ समाज को संतुलित रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस प्रकार प्रस्तुत इकाई में सामाजिक व्यवस्था और सामाजिक रचनातंत्र के विषय में जानकारी प्राप्त की। इस संदर्भ में समाजशास्त्रियों और मानवशास्त्रियों द्वारा दी गयी परिभाषाओं को भी समझा। सामाजिक व्यवस्था के लक्षण और पक्षों के विषय में जानकारी से हमे सामाजिक रचनातंत्र की व्यवस्थित जानकारी प्राप्त होती है। समाज की व्यवस्था और रचनातंत्र अनेक प्रक्रियाओं के साथ संलग्न हैं, इसमें सतत परिवर्तन आता रहता है। इसकी जानकारी अब आगे की इकाई में प्राप्त करेंगे।

स्वाध्याय

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर विस्तार से दीजिए :

(1) सामाजिक व्यवस्था का अर्थ देकर उसके लक्षण समझाइए।

(2) सामाजिक व्यवस्था के पक्षों की चर्चा कीजिए।

(3) सामाजिक रचनातंत्र का अर्थ और उसके लक्षणों की जानकारी दीजिए।

2. निम्नलिखित प्रश्नों के मुद्दासर उत्तर दीजिए :

(1) टाल्कोल पार्सन्स का AGIL मॉडल समझाइए।

(2) सामाजिक व्यवस्था का अर्थ समझाइए।

3. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दीजिए :

(1) सामाजिक व्यवस्था की परिभाषा दीजिए।

(2) सामाजिक रचनातंत्र की परिभाषा दीजिए।

(3) AGIL मॉडल में पार्सन्स ने सामाजिक रचनातंत्र की किन चार कार्यात्मक आवश्यकताओं को दर्शाया है ?

4. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक-एक वाक्य में दीजिए :

(1) उद्देश्य प्राप्ति की समस्या किस संस्था द्वारा हल होती है ?

(2) पार्सन्स द्वारा दिया गया मॉडल किस नाम से जाना जाता है ?

(3) उपसमूह (क्षेत्रीय) समूह की परिभाषा दीजिए।

(4) रचनातंत्र का कोई एक उदाहरण दीजिए।

5. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर सही विकल्प चुनकर दीजिए :

(1) मानव समाज की शरीर रचना से तुलना किसने की है ?

(अ) रोबर्ट मर्टन (ब) ऑगस्ट कोंते (क) कार्ल मार्क्स (ड) हर्बर्ट स्पेन्सर

(2) मानव की आवश्यकताओं पर आधारित सामाजिक व्यवस्था का विचार किसने दिया ?

(अ) रेडक्लिफ ब्राऊन (ब) मेलिनो वस्की

(क) रोबर्ट मर्टन (ड) टाल्कोट पार्सन्स

(3) सामाजिक क्रिया द्वारा उद्‌भवित उपव्यवस्थाओं का विचार किसने दिया ?

(अ) ज्हॉन्सन (ब) मेकाईवर

(क) रोबर्ट मर्टन (ड) टाल्कोट पार्सन्स

(4) निम्नलिखित में से कौन-सा समूह विद्यालय का उपसमूह नहीं है ?

(अ) शिक्षक (ब) विद्यार्थी (क) लिपिक (ड) गाँव

प्रवृत्ति

- अपने विद्यालय की रचनातंत्र का चार्ट बनाइए।
- अपने गाँव अथवा शहर के उपसमूहों की सूची तैयार कीजिए।

4 सामाजिक प्रक्रियाएँ और सामाजिक परिवर्तन

प्रस्तावना

समाजशास्त्र मनुष्य के सामाजिक पक्षों का वैज्ञानिक पद्धति से अध्ययन करता है समाजशास्त्र विज्ञान होने से सामाजिक घटनाओं को देखने-जाँचने और उसका अर्थघटन करने में निश्चित विभावनाओं-सिद्धांतों-अभिगमों और पद्धतियों का उपयोग करता है।

मित्रो, आपको समाजशास्त्र का यथार्थ परिचय प्राप्त करना है? सामाजिक घटनाओं को देखना-समझना है? तो आपको समाजशास्त्रीय विभावना और सिद्धांतों- अभिगमों की स्पष्ट जानकारी प्राप्त करना अनिवार्य है। आगे आपने समुदाय, सामाजिक मानदंड, सामाजिक नियंत्रण जैसी विभावनाओं की जानकारी प्राप्त की। इस इकाई में हम सामाजिक प्रक्रिया और परिवर्तन के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे।

यदि आपको समाज विषय में सही ज्ञान या जानकारी प्राप्त करनी हो तो आपके मन में अनेक प्रश्न उद्‌भव होने चाहिए जैसे कि –

- ऐसी कौन-सी बात (विषय-वस्तु) है जो समाज बनाता है?
- लोग मानव संस्कृति का निर्माण किस तरह करते हैं?
- समाज में जटिल व्यवस्था किस तरह बनती है?
- समाज में गतिशीलता क्यों दिखाई देती है?
- लोग अपनी आवश्यकताओं को किस तरह पूर्ण करते हैं?

सामाजिक प्रक्रिया की परिभाषा

मेकाईवर : ''सामाजिक प्रक्रिया ऐसी बात है जिसके द्वारा समूह का संबंध स्थापित होता है, और अपना विशिष्ट स्वरूप हासिल करता है। सामाजिक प्रक्रिया सतत परिवर्तनशील है इसलिए कि संबंधों में बदलाव होता रहता है।''

मेक्स लर्नर : ''सामाजिक प्रक्रिया के मूल में गति, परिवर्तन प्रवाह और समाज में सतत बदलाव अभिप्रेत है। सामाजिक प्रक्रिया के माध्यम से ही समाज में विविध व्यक्ति अपने उद्देश्य-लक्ष्य की पूर्ति करना चाहते हैं।''

सामाजिक प्रक्रिया सांस्कृतिक विविधता के साथ संलग्न है, जिससे प्रत्येक समाज का स्वरूप अलग होता है। उदाहरण – आदिवासी समाज, पश्चिमी समाज।

सामाजिक क्रिया

सामाजिक क्रिया की विभावना एक प्रकार की वैचारिक योजना (Conceptual scheme) पूरी करती होने से उसके अंतर्गत कोई भी घटना या सामाजिक परिवर्तन समझा जा सकता है। सभी क्रियाएँ एक निश्चित अर्थ द्वारा सामाजिक जगत की रचना करती हैं। समाजशास्त्र सामाजिक क्रिया का विचार मेक्स वेबर ने दिया है। मेक्स वेबर के अनुसार ''सामाजिक क्रिया की वैज्ञानिक पद्धति से अर्थपूर्ण जानकारी प्राप्त करना विज्ञान है।'' उनके मतानुसार व्यक्ति की अर्थपूर्ण क्रिया जो अन्य व्यक्ति के प्रभाव से हुई हो वह सामाजिक क्रिया है।

सामाजिक क्रिया

मानव की सामाजिक क्रिया द्वारा ही समाज कार्यान्वित रहता है। व्यक्ति जब निश्चित उद्देश्य को ध्यान में रखकर किसी संदर्भ में क्रिया करे तब सामाजिक क्रिया बनती है। उदाहरण : आने वाली परीक्षा में उत्तम परिणाम लाने के लिए नियमित रूप से अध्ययन में वृद्धि करने का विद्यार्थी का व्यवहार।

पार्सन्स के मतानुसार ''व्यक्ति की उद्देश्य अभिमुख क्रिया सामाजिक क्रिया है जो समाज व्यवस्था रचती है।'' उदाहरण; डिग्री लेने के लिए कॉलेज में प्रवेश लेना। संक्षेप में सामाजिक क्रिया अर्थात् दूसरों से प्रभावित हो, प्रतिभाव रूप हो, क्रिया के संदर्भ में हो, अर्थपूर्ण हो और दूसरे व्यक्ति या व्यक्तियों के संदर्भ में और क्रिया करनेवाले व्यक्ति ने उसका अर्थ दिया हो।

सामाजिक क्रिया के तत्त्व

पार्सन्स द्वारा दर्शाए गए सामाजिक क्रिया के चार तत्त्व निम्नानुसार हैं -

(1) स्व अथवा कर्ता (2) ध्येय अथवा लक्ष्य (3) शर्तें अथवा संजोग (4) साधन।

पार्सन्स के अनुसार सामाजिक क्रिया करनेवाले किसी भी व्यक्ति की क्रिया में चार तत्त्व अनिवार्यरूप से परस्पर भूमिका निभाते हैं। मानव व्यवहार को समझने के लिए इन तत्त्वों को समझना आवश्यक है।

(1) स्व अथवा कर्ता : क्रिया का मुख्य चालक बल 'स्व' है। क्रिया करने वाला मात्र मानव देह नहीं अपितु वह सामाजिक व्यक्ति है। व्यक्ति मात्र स्वयं शरीर ही नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी विशिष्ट पहचान होती है। व्यक्ति स्वयं एक अलग इकाई है। व्यक्ति सामाजिक रूप से जागरूक और आत्मचैतन्य है।

'स्व' को हम व्यक्तित्व या चरित्र भी कह सकते हैं। व्यक्ति का व्यक्तित्व यह प्रवृत्ति या प्रत्याघातों का केन्द्र है। व्यक्ति या 'स्व' कार्य करने के लिए शरीर को साधन के या शर्त के रूप में उपयोग में लेता है और उनके द्वारा उद्देश्य हासिल करता है। क्रिया करनेवाला 'स्व' है और 'स्व' का निर्माता समाज है।

कर्ता को 'स्व' अन्य व्यक्तियों, चीजवस्तुओं या परिस्थितियों को किस स्वरूप में देखेगा? उसका क्या अर्थ लगाएगा? उन पर ही उनके व्यवहार का मुख्य आधार है? इसलिए कि स्व को समझना खूब जरूरी है। क्योंकि उस पर वह जगत का प्रत्यक्षीकरण किस तरह करता है? वह क्या विचारता है? ऐसी 'आत्मलक्षी बात' जानने को मिलती है। उदाहरण, पुरुषों की स्त्रियों को देखने की दृष्टि।

(2) ध्येय अथवा लक्ष्य : ध्येय व्यक्ति के स्व की कल्पना या अनुमान है। उद्देश्य में भविष्यकाल का संदर्भ रहा होता है। उद्देश्य अर्थात् वर्तमान काल में अस्तित्व रखता नही ऐसी भविष्य की स्थिति जिसे कल्पना द्वारा जाना जा सकता है और प्रयत्न तथा संकल्प द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। प्रत्येक सामाजिक क्रिया उद्देश्यलक्षी हैं। व्यक्ति के व्यवहार के अर्थघटन में उद्देश्य का तत्त्व महत्त्वपूर्ण है। कर्ता के समाज के मूल्य और मानदंड उसके उद्देश्य की पसंदगी को प्रभावित करते हैं। उदाहरण - जैन या ब्राह्मण युवक कतलखाने में नौकरी नही करेगा। उद्देश्य मानव विचार, व्यवहार और आचरण को सतत प्रभावित करता है। उद्देश्य प्राप्त करने में व्यक्ति सतत प्रयत्नशील रहता है। मानव व्यवहार के लिए वह चालक बल है। उद्देश्य व्यक्ति के लिए प्रेरक या प्रेरणा है। उदाहरण, परीक्षा में प्रथम आने के लिए विद्यार्थी सब कुछ भूलकर अभ्यासमग्न हो जाता है। व्यक्ति के उद्देश्य निश्चित करने के लिए गहन मूल्यों, आवश्यकताओं, मानदंड और सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्य महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

(3) शर्तें अथवा संजोग : जिन अवरोधों को पार न कर सकें उन्हें शर्तें (चुनौतियों) के रूप में पहचाना जाता है। संजोग अथवा चुनौतियाँ अर्थात् ऐसी अवस्थाएँ जिन्हें पार किये बिना उद्देश्य प्राप्त नहीं हो सकता। उद्देश्य प्राप्ति के लिए ऐसे संकल्प और प्रयत्नों की आवश्यकता पड़ती हैं वैसे ही उद्देश्य प्राप्ति के मार्ग में आनेवाली समस्याओं को पार करना या सामना करने की आवश्यकता पड़ती है। उदाहरण : डिग्री प्राप्त करने के लिए तीन वर्ष गुजारने पड़ते हैं। व्यक्ति को उद्देश्य प्राप्ति सहज रूप से नहीं होती है। उसकी उद्देश्य प्राप्ति में अनेक अवरोध आते हैं। वे अवरोध व्यक्ति दूर न कर सके उन्हें शर्तें (चुनौतियाँ) कह सकते हैं। ये चुनौतियाँ व्यक्ति के कार्य के लिए सीमा-मर्यादा बांधते हैं। चुनौतियाँ शरीर के अंदर या बाहर हो सकती हैं। उद्देश्य प्राप्ति में अवरोध तीन प्रकार के आते हैं :

(a) कर्ता की शारीरिक शक्ति : पायलॅट बनना हो परंतु आँखें कमजोर हों, बहरापन हो ।

(b) भौगोलिक पर्यावरण : निश्चित समय पर पहुँचना हो और चक्रवात के साथ बरसात हो।

(c) सामाजिक पर्यावरण : दलित युवक को पुजारी बनना हो परंतु समाज द्वारा मान्यता न हो।

इस प्रकार उद्देश्यप्राप्ति हेतु तीन प्रकार की शर्तों का सामना करना पड़ता है। इसे कईबार साधन के रूप में भी पहचाना जाता है। जबकि किसे शर्त के रूप में या साधन मानना यह परिस्थिति पर निर्भर करता है।

(4) साधन : साधन अर्थात व्यक्ति की परिस्थिति के ऐसे पक्ष अथवा कारक जिन पर उसका नियंत्रण होती है और उसे उसकी उद्देश्य प्राप्ति में सहायक हो सकती है। साधन उद्देश्य प्राप्ति के लिए आवश्यक है। साधन का स्वरूप सरल या जटिल हो सकता है। उदाहरण – लिखने के लिए पेन, संदेश के लिए फोन। किसी भी उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए उद्देश्य के अनुरूप साधन आवश्यक बनते हैं। कई बार एक से अधिक साधनों की उद्देश्य प्राप्ति हेतु आवश्यकता पड़ती है। कभी व्यक्ति को विभिन्न साधनों में एक की ही पसंदगी करनी पड़ती है। उस समय यदि भूल हो जायें तो उद्देश्य प्राप्ति नहीं होती। किसी एक परिस्थिति में साधन हो वे साध्य बनते हैं। एक के लिए जो साधन हो वे अन्य के लिए संजोग बनतें है।

क्रिया के लिए चारों तत्त्वों का होना अनिवार्य है। किसी एक की अनुपस्थिति सामाजिक क्रिया नही होने देती।

सामाजिक आंतरक्रिया (Social Interaction)

समाज में मनुष्य एक–दूसरे के साथ अनेकों तरह से संबंध में आते हैं। जैसे कि दुकानदार–ग्राहक, मालिक–नौकर, शिक्षक–विद्यार्थी। ऐसे अनेकविध सामाजिक संबंधों में एक–दूसरे से जुड़कर समाज की रचना होती है। एक–दूसरे के बीच के सामाजिक संबंधो में पारस्पारिक आंतरक्रिया की निश्चित प्रकार का तरीका अथवा नियमित रीत रही होती है। सामाजिक संबंधों में व्यक्त होता आंतरक्रिया का मुख्य स्वरूपों का ज्ञान समाज संबंधी जानकारी प्राप्त करने में बहुत महत्त्वपूर्ण है।

सामाजिक आंतर क्रिया का विचार सामाजिक क्रिया के संदर्भ में ही समझ सकते हैं, जो आगे समझ लिया है। क्योंकि वे पारस्परिक क्रियाएँ हैं। सामाजिक आंतरक्रिया अर्थात दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच की पारस्परिक सामाजिक क्रिया है। ''व्यक्ति और व्यक्ति, व्यक्ति और समूह, समूह और समूह के बीच समानतापूर्वक, अर्थपूर्ण पारस्परिक क्रिया अर्थात् सामाजिक आंतरक्रिया। उदाहरण दो मित्रों के बीच वार्तालाप, शिक्षक और विद्यार्थी के बीच प्रश्नोत्तर की चर्चा।''

सामाजिक आंतरक्रिया की जानकारी देते डेविस समझाते हैं कि सामाजिक आंतरक्रिया के लिए संपर्क जरूरी है और संपर्क के लिए भौतिक या संवेदनावाहक माध्यम की आवश्यकता पड़ती है। इसलिए कि सामाजिक आंतरक्रिया में परस्पर क्रिया करते व्यक्ति या समूह क्रिया के लिए किसी एक माध्यम का उपयोग करते हैं। ऐसा माध्यम भाषा, वाणी, अंगचेष्टा, हावभाव या किसी भी प्रकार की शारीरिक भाषा हो सकती है। इसके उपरांत रेडियो, टीवी, समाचारपत्र, फिल्में, सोशियल मीडिया जैसे जनसंचार के माध्यमों का भी उपयोग हो सकता है। जबकि ऐसा माध्यम सामाजिक अर्थ रखने वाला होना चाहिए।

सामाजिक आंतरक्रिया की परिभाषा : सोरोकीन के मतानुसार आंतरक्रिया ऐसी घटना है, कि जिसमें एक पक्ष दूसरे पक्ष की बाह्यक्रिया या मानसिक जीवन पर असर डालता है।

सामाजिक आंतरक्रिया

उपर्युक्त परिभाषा के आधार पर आंतरक्रिया का अर्थ कह सकते हैं कि ''कोई भी दो या उससे अधिक व्यक्ति या समूह प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से संकेत व्यवहार के माध्यमों द्वारा एक दूसरे के आंतरिक या बाह्य व्यवहार पर प्रभाव डालती हो ऐसी घटना को सामाजिक आंतरक्रिया कहते हैं।'' उदाहरण, शिक्षक विद्यार्थी को सिखाता है, दो व्यक्ति झगड़ते हैं, लड़ाई करते हैं आदि।

सामाजिक आंतरक्रिया के लक्षण : सामाजिक आंतरक्रिया को अधिक स्पष्ट समझने के लिए उसके लक्षणों को समझना पड़े, जो निम्नानुसार है:

(1) दो या दो से अधिक पक्ष (2) माध्यम (3) पारस्परिक प्रभाव

(1) दो या दो से अधिक पक्ष : सामाजिक आंतर क्रिया एक व्यक्ति से नहीं होती। उसके लिए कम से कम दो व्यक्ति या समूह जरूरी होते हैं। जैसे कि पति-पत्नी के बीच होती क्रिया। दो व्यक्तियों के बीच है, जब शिक्षक-विद्यार्थी और लेखक-वाचक के बीच होती क्रिया व्यक्ति-समूह के बीच की क्रिया है। दो क्रिकेट टीम के बीच की क्रिया समूहों के बीच होती आंतरक्रिया है। आंतरक्रिया रूब-रू या प्रत्यक्ष भी हो सकती है तथा दूर रहते लोगों के साथ परोक्ष रूप से भी हो सकती है, जिसमें संचार साधनों की आवश्यकता पड़ती है।

(2) माध्यम : मात्र दो पक्षों से आंतरक्रिया संभव नहीं बनती, परंतु परस्पर प्रभाव डालने हेतु कोई माध्यम जरूरी है। जिसमें हावभाव कोई भी स्वरूप, शाब्दिक भाषा या चित्रों का भी उपयोग किया जा सकता है। उदाहरण - बहरे-गूँगे व्यक्यिों के बीच होती क्रिया-प्रतिक्रिया। आंतर क्रिया में जिन माध्यमों का उपयोग होता ये सामाजिक अर्थ रखनेंवाला होना चाहिए। माध्यमों द्वारा व्यक्त होता अर्थ, भाव लगाव सभी समझते होने चाहिए। उदाहरण राष्ट्रध्वज, रेडक्रोस आदि।

(3) पारस्परिक प्रभाव : सामाजिक आंतरक्रिया प्रभाव डालती घटना है। जिसमें व्यक्ति या समूह ऊपर, वाणी, भाषा, पुस्तकें, टी.वी., फिल्मों द्वारा प्रभाव पड़ता है। जो बाहरी व्यवहार स्वरूप हो सकती है तथा मूल्य, मान्यता, हित, अपेक्षा जैसे आंतरिक प्रभाव भी होते हैं। उदाहरण-विद्यार्थी शिक्षक को नमस्कार करता है। जिससे शिक्षक में विद्यार्थी के प्रतिभाव जन्मता है, आंतरिक प्रभाव है।

संक्षेप में आंतरक्रिया एक पारस्परिक प्रवृत्ति है परस्पर उद्दीपन की प्रक्रिया है और परस्परावलंबित है।

सामाजिक आंतरक्रिया का स्वरूप-प्रकार

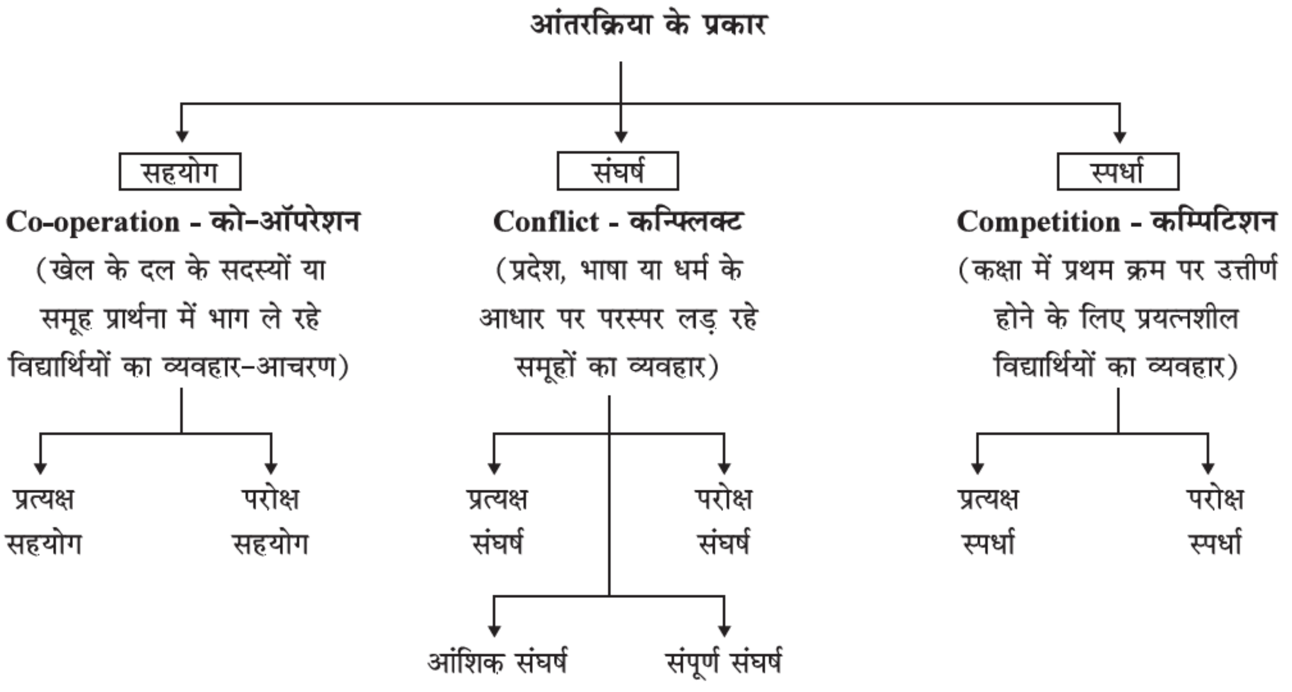

डेविसनें सामाजिक आंतरक्रिया के तीन प्रकार दर्शाए है : (1) सहयोग, (2) स्पर्धा, (3) संघर्ष।

(1) सहयोग : सहयोग के बिना सामूहिक जीवन या सामाजिक जीवन संभव नहीं। सहयोग मानव जीवन की सार्वत्रिक प्रक्रिया है। सहयोग एक ऐसी प्रक्रिया जिसमें सर्वसंमत उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सभी साथ मिलकर प्रवृत्ति करते हैं। उदाहरण, हॉकी टीम के खिलाड़ी। जब मनुष्य जिस वस्तु या साधन प्राप्त करना चाहता हो उसकी संख्या कम हो तब एक दूसरे के सहयोग से संयुक्त रूप से साधनों का उपयोग करते हैं। उदाहरण – वाहनों का उपयोग।

मनुष्य अपनी विविध आवश्यकताओं को कभी अकेला संतुष्ट नहीं कर सकता। इसलिए उसे दूसरों की सहायता की आवश्यकता पड़ती है। इस घटना से सहयोग उत्पन्न होता है। पारस्परिक मदद करने के व्यवहार का तरीका सभी समाज या समूह में दिखाई देते हैं। व्यक्ति में समाजीकरण द्वारा इस आदत–व्यवहार का निर्माण होता है। इसलिए सहयोग सीखा हुआ व्यवहार है।

व्याख्या : फेर चाईल्ड के अनुसार, 'सहयोग ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति या समूह संगठित होकर अपने प्रयत्नों से समान उद्देश्य प्राप्ति हेतु कार्य करते हैं।'

नीचे के चित्र में आप देख सकते है कि सभी व्यक्ति एक–दूसरे के सहयोग से विश्व की सबसे बड़ी (रिकोर्ड) जलेबी बना रहे हैं।

सहयोग

सहयोग के प्रकार : मेकाईवर ने सहयोग के दो प्रकार दर्शाए हैं।

(अ) प्रत्यक्ष सहयोग : किसी व्यक्ति या समूह की उद्देश्य प्राप्ति में दूसरा व्यक्ति या समूह प्रत्यक्ष रूप से सहायक बने, उसे प्रत्यक्ष सहयोग कहते हैं। उद्देश्य प्राप्ति के लिए सीधा या संयुक्त प्रयास करे, उसे प्रत्यक्ष सहयोग कहते हैं। उदाहरण – बालक साथ में मिलकर कोई खेल खेले, मजदूर इकट्ठे होकर कोई वजनदार वस्तु उठाएँ। प्राथमिक समूहों में प्रत्यक्ष सहाय केन्द्र में होता है। प्रत्यक्ष सहयोग मनुष्य को सामाजिक–मानसिक संतोष प्रदान करता है।

(ब) परोक्ष सहयोग : किसी एक ही उद्देश्य के लिए दो या उससे अधिक पक्ष अप्रत्यक्ष रूप में एक–दूसरे को

सहायक बने तब उसे परोक्ष सहयोग कहते हैं। इस प्रकार के सहयोग में अलग-अलग व्यक्ति अलग-अलग प्रवृत्ति करते हैं। जिसमें प्रवृत्तियों का विभाजन, विशिष्टीकरण हुआ होता है। उदाहरण – विद्यालय में शिक्षक पढ़ाते हैं, चपरासी घंटी बजाता है, प्रधानाचार्य प्रशासन का कार्य करता है।

दूरवर्ती समूहों में परोक्ष सहयोग पाया जाता है। परोक्ष सहयोग आधुनिक औद्योगिक समुदाय का लक्षण बन जाता है। एक प्रकार के अकेलेपन का अनुभव कराता है तो कहीं अनेक मानसिक समस्याओं का सर्जन करता है।

(2) स्पर्धा : स्पर्धा आंतरक्रिया की ऐसी प्रक्रिया है कि जिसमें दो या इससे अधिक व्यक्तियों या पक्षों का लक्ष्य एक ही हो। परंतु प्रत्येक पक्ष दूसरे पक्ष से पहले लक्ष्य प्राप्त करना चाहता है दोनों पक्ष एक-दूसरे की उद्देश्य प्राप्ति में अलग रखकर उद्देश्य प्राप्त करनें का प्रयत्न करतें हैं। उदाहरण – बोर्ड की परीक्षा में प्रथम आने की स्पर्धा। दूसरे उदाहरण के रूप में देखें तो चित्र में दर्शाया है इसके अनुसार दौड़ की स्पर्धा में स्पर्धक अपने उद्देश्य को लक्ष्य में रखकर स्पर्धा में उतरते है। जब उद्देश्य की कमी हों या मर्यादित संख्या हो और उसे प्राप्त करनेवाले व्यक्ति या समूह अधिक हो तब स्पर्धा उद्भव होती है। स्पर्धा संघर्ष का सुधरा हुआ स्वरूप है। स्पर्धा के लिए नियम होते हैं। यदि नियमों का उल्लंघन हो तो वह स्पर्धा नहीं रहती। तो वह संघर्ष में परिवर्तित होती है। उदाहरण – चुनाव लड़नेवाले पक्षों के उमीदवार।

फेर चाइल्ड के अनुसार, ''स्पर्धा अर्थात कम वस्तुओं का उपयोग का अधिकारों के लिए किये जानेवाले प्रयत्न'' उदाहरण, वर्ल्डकप प्राप्त करने हेतु खेलती टीमे।

स्पर्धा

स्पर्धा के प्रकार

(अ) प्रत्यक्ष स्पर्धा : स्पर्धकों में निकट का संपर्क होता है और भौतिक रूप से भी निकट होते है वे एक दूसरे से स्पर्धा में समान होते हैं, नियमों के अधीन रहकर, परस्पर एक-दूसरे से पहले लक्ष्य प्राप्त करने का प्रयत्न करें उसे प्रत्यक्ष स्पर्धा कहते हैं। उदाहरण-कक्षा में प्रथम स्थान लाने के लिए स्पर्धा, दौड़ने में क्रम लाना।

(ब) परोक्ष स्पर्धा : प्रतिस्पर्धा परस्पर परिचित न हों, प्रत्यक्ष संपर्क में न हो तथा एक दूसरे की उपस्थिति से भी समान नहीं होते, फिर भी एक-दूसरे से पहले ध्येय प्राप्ति के लिए प्रयास करते हैं, तब इसे परोक्ष स्पर्धा कहते हैं। उदाहरण – बाजार स्पर्धा, बैंक में नौकरी प्राप्त करने के लिए परीक्षा देने वाले उमीदवार।

लोग दूसरे से अधिक प्रतिष्ठा या प्रसिद्धि अथवा स्तर प्राप्त करने का प्रयत्न करे, वह परोक्ष स्पर्धा का उदाहरण है।

(3) संघर्ष : जब दो या उससे अधिक पक्ष एक ही उद्देश्य प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करते हों और उनमें से प्रत्येक पक्ष विरोधी पक्ष की इच्छा के विरूद्ध जाकर भी उसे उद्देश्य से वंचित रखने या अंकुश में लाने, नुकसान पहुँचाने या उसका नाश करने का प्रयत्न करे तो उसे संघर्ष की प्रक्रिया कहते हैं। उदाहरण : सत्ता प्राप्ति हेतु होने वाला चुनाव संग्राम।

संघर्ष

मेकाईवर और पेज के अनुसार, ''जब मनुष्य एक ही या कमी वाले ध्येय प्राप्त करने के लिए एक-दूसरे का मुकाबला करें, एक-दूसरे को नुकसान करके आमने सामने आ जायें तब इसे सामाजिक संघर्ष कहा जाता है।'' उदा., जाति संघर्ष।

संक्षिप्त में संघर्ष एक ही लक्ष्य की प्राप्ति के लिए दो पक्षों के बीच परस्पर विरोधी प्रवृत्ति है।

संघर्ष के प्रकार

(अ) प्रत्यक्ष और परोक्ष संघर्ष : जब दो पक्ष परस्पर की लक्ष्य प्राप्ति के प्रयास में सीधा अवरोध खड़ा करके एक-दूसरे को नीचा दिखाने अथवा एक-दूसरे को नष्ट करने के लिए शारीरिक बल का प्रयोग करे तब इस प्रकार के संघर्ष को प्रत्यक्ष संघर्ष कहते हैं। उदाहरण : दो व्यक्ति मारामारी या वाकयुद्ध करते हों, दो पक्ष एक-दूसरे को हानि पहुचाएँ।

जब एक ही उद्देश्य प्राप्ति के लिए दोनों पक्ष परस्पर परोक्ष या अप्रत्यक्ष के रूप में अवरोध उत्पन्न करे तो उसे परोक्ष संघर्ष कहते हैं। उदाहरण-शीतयुद्ध, दो कंपनियों के बीच का प्रचार युद्ध।

(ब) आंशिक संघर्ष-संपूर्ण संघर्ष : दो पक्ष एक ही ध्येय की प्राप्ति को लेकर एक-दूसरे से विरोधी प्रवृत्ति करते हों तथा इन दोनों पक्षों के बीच सहमति या करार संभव हो तब ऐसे संघर्ष को आंशिक संघर्ष कहा जाता है। उदाहरण के रूप में मजदूरों तथा मालिकों के बीच संघर्ष जो सहमति या कानून द्वारा टाली जा सकती है।

जब संपूर्ण प्रकार का संघर्ष अर्थात् जिसमें भाग लेनेवाला प्रत्येक पक्ष आमने-सामने बातें पक्ष का नाश करने का प्रयत्न करता है अर्थात् ऐसे संघर्ष में संमति या करार संभव ही नही। उदाहरण - दो राष्ट्रों के बीच होनेवाला युद्ध, प्रत्यक्ष या परोक्ष, आंशिक और संपूर्ण संघर्ष, व्यक्तिगत या समूह संघर्ष भी हो सकता है, तथा आंतरिक और बाह्य संघर्ष भी हो सकता है।

(क) व्यक्तिगत और समूह संघर्ष : दो व्यक्तियों के बीच का संघर्ष व्यक्तिगत संघर्ष कहलाता है। उदाहरण - पति-पत्नी के बीच, दो मित्रों के बीच का संघर्ष।

जब दो समूहों के बीच संघर्ष हो तब ऐसे संघर्ष को समूह संघर्ष कहा जाता है। उदाहरण, दो जातियों के बीच का संघर्ष। उपर्युक्त दोनों संघर्ष प्रत्यक्ष या परोक्ष स्वरूप तथा आंशिक या संपूर्ण स्वरूप का हो सकता है।

(ड) आंतरिक और बाह्य संघर्ष : किसी समूह के बीच परस्पर प्रत्यक्ष या परोक्ष संघर्ष हो तब ऐसे संघर्ष को आंतरिक संघर्ष कहा जाता है। उदाहरण - परिवार में पिता-पुत्र के बीच संघर्ष। जब एक समूह दूसरे समूह के साथ संघर्ष में हो तब इसे बाह्य संघर्ष कहा जाता है। उदाहरण - कोमी संघर्ष।

प्रत्येक संघर्ष की मात्रा या तीव्रता में अंतर हो सकता है। उसमें असहयोग या मनमुटाव से शुरू होकर एक-दूसरे को नष्ट करने तक हो सकता है।

सामाजिक गतिशीलता (Social Mobility)

सामाजिक गतिशीलता यह स्तर रचना में व्यक्ति अथवा समूह का स्थान परिवर्तन सूचित करती प्रक्रिया है। प्रत्येक समाज में जनसंख्या, आर्थिक–राजनैतिक परिस्थिति में तथा सामाजिक क्षेत्र में कम–अधिक मात्रा में परिवर्तन होता रहता है। समाज रचना को जीवित रहने के लिए इन सभी परिवर्तनों के साथ अनुकूलन स्थापित करना आवश्यक हो जाता है। इसीसे सामाजिक गतिशीलता की प्रक्रिया का उद्भव होता है।

समाजशास्त्रियों ने सामाजिक रचना के खुलेपन का अंदाजा निकालने के लिए सामाजिक गतिशीलता का अध्ययन करते हैं। सामाजिक गतिशीलता समाज में रहे अवसरों का अस्तित्व और अभावों का निर्देश करता है। वह एक सामाजिक स्तर से दूसरे सामाजिक स्तर की तरफ प्रयाण करती है।

सामाजिक गतिशीलता की व्याख्या

सोरोकिन के अनुसार, ''व्यक्ति, सामाजिक वस्तु (Social Object) या मूल्य का एक सामाजिक स्थान से दूसरे सामाजिक स्थान में स्थलांतर अर्थात् सामाजिक गतिशीलता।''

किम्बोल यंग मतानुसार ''सामाजिक गतिशीलता अर्थात् वर्ग अथवा स्थिति या सामाजिक प्रतिष्ठा के क्रम में ऊपर अथवा नीचे की तरफ गति''

संक्षेप में सामाजिक गतिशीलता चढ़ते या उतरते परिवर्तनवाली स्थिति है, जो स्तर रचना में व्यवस्था के एक स्तर से दूसरे स्तर में ले जाती है।

सामाजिक गतिशीलता के लक्षण

(1) सार्वत्रिकता : सामाजिक गतिशीलता प्रत्येक स्तर रचनावाले समाज में पायी जाती है। फिर वह वर्ग आधारित या जाति आधारित व्यवस्थावाला समाज होता है। भारत में सामाजिक गतिशीलता में जाति आधारित समाज होने पर भी उसमें गतिशीलता पायी जाती है। उदाहरण – विश्व के सभी समाजों में स्त्रियों के स्तर में होनेवाला परिवर्तन। संक्षेप में सामाजिक गतिशीलता की प्रक्रिया सार्वत्रिक दिखाई देती है।

(2) मात्रा में अंतर : सभी समाजों में सामाजिक गतिशीलता की मात्रा या प्रमाण एक समान नहीं होता। एक ही समाज में हमेशा प्रमाण समान नहीं होता। उदाहरण – मध्ययुग में सामाजिक गतिशीलता धीमी थी परंतु आधुनिक समय में अधिक दिखाई देती है। जाति व्यवस्था से वर्गव्यवस्थावाले समाज में गतिशीलता अधिक दिखाई देती है। इस प्रकार समाज और समय अनुसार मात्रा में अंतर पाया जाता है।

(3) स्तर (पद) में बदलाव सूचित प्रक्रिया : सामाजिक गतिशीलता से व्यक्ति या समूह के स्तर या स्थान में परिवर्तन या बदलाव आता है। या तो स्तर ऊँचा उठता है या नीचे आते हैं। संक्षेप में सामाजिक गतिशीलता व्यक्ति या समूह को ऊपर से नीचे या नीचे से ऊपर स्थान परिभ्रमण सूचित करती प्रक्रिया है।

सामाजिक गतिशीलता के प्रकार

(1) आड़ी (तिरछी) गतिशीलता : ब्रुम और सेल्जनीक के मतानुसार ''एक स्थान पर से समान स्तर के दूसरे स्थान पर स्थलांतर अर्थात् आड़ी गतिशीलता'' व्यक्ति या समूह का स्थान बदलाव परंतु उसके स्तर या पद में कोई बदलाव न आये ऐसी गतिशीलता को आड़ी गतिशीलता कहते हैं।

उदाहरण – शिक्षक एक विद्यालय छोड़कर दूसरे विद्यालय में जाये। आड़ी गतिशीलता में व्यक्ति या समूह का स्थान बदलता है; परंतु उसकी प्रतिष्ठा, आय या सत्ता में अधिक प्रमाण में परिवर्तन नहीं आता। उदाहरण IAS अधिकारी को स्वास्थ्य विभाग में से शिक्षण विभाग में रखें। भारत में दिखाई देती जाति में गतिशीलता आड़ी गतिशीलता का उदाहरण है।

(2) खड़ी (सीधी) गतिशीलता : खड़ी गतिशीलता आड़ी गतिशीलता से भिन्न विचार है। जब व्यक्ति या समूह का स्थान परिवर्तन के साथ उसका स्तर भी बदल जाय, ऐसी गतिशीलता को सीधी गतिशीलता कहते हैं उदाहरण लिपिक से

अध्यापक बने। खड़ी गतिशीलता में व्यक्ति या समूह के स्थान बदलने के साथ प्रतिष्ठा, आय, सत्ता में बड़ी मात्रा में परिवर्तन आता है।

खड़ी गतिशीलता की दिशानुसार उसके दो उपविभाग किये गये हैं: (अ) ऊर्ध्वगामी खड़ी गतिशीलता (ब) निम्नगामी खड़ी गतिशीलता।

(अ) ऊर्ध्वगामी खड़ी (सीधी) गतिशीलता : व्यक्ति या समूह के स्थान परिवर्तन के साथ-साथ उसका स्तर भी बदल जाता हो और मूल स्तर से ऊपर के स्तर में स्थान प्राप्त करें ऐसी गतिशीलता को ऊर्ध्वगामी गतिशीलता कहा जाता है। ऊर्ध्वगामी खड़ी गतिशीलता के दो स्वरूप हैं:

(I) व्यक्तिलक्षी ऊर्ध्वगामी गतिशीलता : निम्न स्तर का कोई व्यक्ति अपने स्तर से अलग पड़ते उच्च स्तर में प्रवेश करे तो उसे व्यक्तिलक्षी ऊर्ध्वगामी गतिशीलता कहते हैं। उदा.-चपरासी से लिपिक बने।

(II) समूहलक्षी ऊर्ध्वगामी गतिशीलता : निम्न स्तर के व्यक्तियों का कोई समूह उच्च स्तर में प्रवेश करे तो उसे समूहलक्षी ऊर्ध्वगामी गतिशीलता कहते हैं। इस प्रकार की गतिशीलता में निम्नस्तर का कोई समग्र समूह बड़ी मात्रा में उच्च स्तर का स्थान प्राप्त करे। उदाहरण-वर्तमान समय में नायक-नायिकाओं का स्तर।

(ब) निम्नगामी खड़ी गतिशीलता : यह गतिशीलता ऊर्ध्वगामी गतिशीलता के विरूद्ध है। इसमें स्थान बदलने के साथ-साथ बदलता स्तर अपने मूल स्तर से नीचा जाता है। ऐसी गतिशीलता में व्यक्ति या समूह मूलस्तर से नीचे के स्तर में स्थलांतर करता है निम्नगामी खड़ी गतिशीलता के दो स्वरूप हैं।

(I) व्यक्तिलक्षी निम्नगामी गतिशीलता : कोई व्यक्ति उच्च सामाजिक स्तर में से निम्न सामाजिक स्तर में प्रवेश करें तो उसे व्यक्तिलक्षी निम्नगामी गतिशीलता कहते हैं। इस गतिशीलता में समग्र समूह नहीं परंतु व्यक्तियों का स्तर निम्न बनता है। उदाहरण - कोई करोड़पति रोड पर आ जाये, कोई उद्योगपति गरीब बन जाये। मात्र उसका स्तर ही निम्न बनता है, सभी उद्योगपति नहीं।

(II) समूहलक्षी निम्नगामी गतिशीलता : जब कोई समूह उच्च दर्जे के सामाजिक स्तर में से निम्न सामाजिक स्तर में प्रवेश करे उसे समूहलक्षी निम्नगामी गतिशीलता कहते हैं। इसमें समग्र समूह का स्तर निम्न होता है। उदाहरण - पहले ब्राह्मणों का जो स्थान या प्रभाव था, वह आज घट रहा है।

इस प्रकार कोई भी समाज सामाजिक गतिशीलता से मुक्त नहीं है। उसमें खड़ी या आड़ी गतिशीलता की प्रक्रिया चलती रहती है।

सामाजिक परिवर्तन (Social Change)

मनुष्य हमेशा परिवर्तन करता रहता है। केवल मानव समाज ही नहीं प्रकृति भी स्थिर नही है। परिवर्तन की प्रक्रिया अविरत रूप से चलती है। सातत्य और परिवर्तन प्रत्येक समाज के लक्षण हैं। प्रत्येक समाज परिवर्तन की प्रक्रिया में से सतत गुजरता रहता है। कोई भी समाज संपूर्णरूप से स्थिर नही रहता। व्यक्ति-व्यक्ति के बीच के संबंध, उसमें से रचती समूह रचना, उद्देश्यों-स्तरों की भूमिका, मानदंड, मूल्य जैसे समाज रचनातंत्रीय भागों में होते बदलाव सामाजिक परिवर्तन कहलाते हैं। बदलते संजोगों में तंत्रप्रथा को टिके रहने के लिए अनुकूलन करना पड़ता है। उसमें से परिवर्तन का उद्‌भव होता है। उदाहरण - वर्तमान राज्य व्यवस्था।

सामाजिक परिवर्तन एक ठोस हकीकत है। सामाजिक परिवर्तन समाज के समूहजीवन के क्रमबद्ध बदलाव को सूचित करता है। सामाजिक परिवर्तन प्रत्येक समाज की लाक्षणिकता में है। फिरभी परिवर्तन की मात्रा में और स्वरूप में भिन्नता पायी जाती है। मुरे के मतानुसार आधुनिक समय में आया परिवर्तन सबसे तीव्र है। सामाजिक परिवर्तन नये अर्थों और मूल्यों को खड़े करता है। संक्षिप्त में सामाजिक परिवर्तन मनुष्य की अनुभव और अहसास की घटना है।

सामाजिक परिवर्तन की व्याख्या :

डेविस के मतानुसार, ''सामाजिक संगठन अर्थात् सामाजिक रचनातंत्र और कार्य में आता परिवर्तन अर्थात् सामाजिक परिवर्तन उदा. संयुक्त परिवार में से विभक्त परिवार''

मेकाईवर और पेज के अनुसार ''सामाजिक संबंधों के ताने–बाने में आता परिवर्तन'' उदाहरण पति–पत्नी के बीच के संबंधों में बदलाव।

ज्हॉनसन के अनुसार ''सामाजिक रचनातंत्र में और मूल्यों, मान्यता, रिवाजों में आता परिवर्तन'' उदाहरणतया भारत में बिनसांप्रदायिक मूल्यों का प्रसार।

सामाजिक परितर्वन के लक्षण : हमने व्याख्याएँ देखीं परंतु सामाजिक परिवर्तन का अर्थ अधिक स्पष्ट करने के लिए उसके लक्षण देखें जो निम्नानुसार हैं–

(1) सामाजिक परिवर्तन यह सामाजिक प्रक्रिया है : सामाजिक परिवर्तन एक निरंतर चलनेवाली प्रक्रिया है। यह प्रत्येक समाज का सहज लक्षण है। सामाजिक आंतरक्रिया उसमें से उद्‌भव होने वाले संबंध, उनका परिणाम रचती सामाजिक व्यवस्थाएँ सतत परिवर्तन की प्रक्रिया अनुभव करती हैं। इस प्रकार सामाजिक परिवर्तन एक प्रक्रिया है।

(2) सामाजिक परिवर्तन सार्वत्रिक प्रक्रिया है : परिवर्तन प्रत्येक समाज का सहज–स्वाभाविक लक्षण है। सामाजिक परिवर्तन किसी एक समाज तक मर्यादित नहीं है। प्रत्येक समाज में पाया जाता है। फिर वह आदिवासी समाज हो या विकसित समाज। इस तरह सामाजिक परिवर्तन एक सार्वत्रिक प्रक्रिया है ऐसा कहा जाता है। उदाहरण – प्राचीन युग में और आधुनिक युग में आया परिवर्तन।

(3) सामाजिक परिवर्तन रचनातंत्र में परिवर्तन सूचित करता है : सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया सामाजिक रचनातंत्र में बदलाव सूचित करता है। इसलिए कि ध्येयों, मानदंडों, स्तर–भूमिका, मूल्यों जैसे भागों में परिवर्तन सूचित करते हैं। उदाहरण – राजतंत्र से भारत में लोकतंत्र की व्यवस्था।

(4) सामाजिक परिवर्तन कार्यों में परिवर्तन को सूचित करता है : सामाजिक परिवर्तन रचनातंत्र की तरह कार्यों में भी परिवर्तन सूचित करता है। इसलिए कि समाज की व्यवस्था के कार्य बदलते हैं। उदाहरण – पहले परिवार सदस्यों का मनोरंजन करता था वह अब टी.वी., फिल्मों ने ले लिया है। राज्य मात्र नागरिक की सुरक्षा ही नहीं कल्याण के लिए कार्य भी करने लगा है।

(5) सामाजिक परिवर्तन स्वयंजनित और आयोजित प्रक्रिया है : हम जानते हैं कि परिवर्तन समाज का सहज लक्षण है। इससे वह स्वयंजनित प्रक्रिया है। तंत्र प्रथा टिकाने के लिए अनुकूलन साधता है जिससें स्वाभाविक परिवर्तन उत्पन्न होता हैं। जो स्वयंजनित है; परंतु आधुनिक समाज में इच्छित समाज की रचना के लिए समाज में इच्छित दिशा में परिवर्तन लाने के लिए सामुदायिक विकास योजना कार्यक्रम द्वारा बुद्धिपूर्वक, उद्देश्यपूर्वक परिवर्तन लाने का प्रयत्न हुआ है। जिसे हम आयोजित प्रक्रिया के रूप में दिखाई देता है। उदाहरण – जनसंख्या नियंत्रण के लिए जनसंख्या नीति तथा लड़की के लिए 18 वर्ष और लड़के के लिए 21 वर्ष विवाह की उम्र अनिवार्य की है।

सामाजिक परिवर्तन का स्वरूप

सामाजिक परिवर्तन समझने के लिए परिवर्तन का स्वरूप, उसकी लाक्षणिकता, परस्पर संबंध और उन स्वरूपों की अभिव्यक्ति में से उत्पन्न होते परिणामों के विषय में उचित जानकारी प्राप्त करनी पड़े तो ही परिवर्तन की दिशा को समझ सकेंगे।

(1) उत्क्रांति स्वरूप का रेखीय परिवर्तन : जो परिवर्तन सतत एक ही दिशा में लगभग सीधा परंतु ऊँचे और नीचे जाती रेखा में आता है जिसे उत्क्रांति स्वरूप का या रेखीय परिवर्तन कहते हैं। रेखीय अर्थात् कहा जाता है कि जो सीधी रेखा में होता हो। ऐसे परिवर्तन में यंत्रात्मक और वैज्ञानिक विकास आदि द्वारा होनेवाले परिवर्तनों का समावेश होता है। ऐसे परिवर्तनों में एकधारी विकास सीधी रेखा में ऊपर जाता हो इस तरह होता है। उदाहरण – आदिम समाज में से कृषक समाज, बाद में औद्योगिक समाज तथा वर्तमान समय का सूचना समाज इस तरह दर्शाया जा सकता है।

(2) आरोह–अवरोह स्वरूप में परिवर्तन : एक दिशा में कभी ऊपर जाता और कभी नीचे जाता; परंतु एक ही दर से विकास करता परिवर्तन अर्थात आरोह–अवरोह स्वरूप का परिवर्तन।

उदाहरण – भारत में राजा–रजवाड़े थे तब अनेक जातियाँ आर्थिक रूप से उच्च स्थान रखती थीं। कालक्रम अनुसार शिक्षण, कुशलता आदि की माँग बढ़ने उनका स्थान निम्न होता गया परंतु बाद में ये जातियाँ, शिक्षण, कुशलता, उद्योग, साहसिकता आदि बढ़ने से इन जातियों का स्तर ऊँचा गया। इस तरह समाज में आरोह, अवरोह पाया जाता है। तेजी मंदी भी इसका उदाहरण है।

(3) चक्रीय स्वरूप का परिवर्तन : पानी की तरंग जैसा ऊँचे-नीचे हिलोरें लेता यह चक्र की तरह जहाँ से शुरू होता है वही स्थिति वापिस आये इस स्वरूप के परिवर्तन को चक्रीय स्वरूप का परिवर्तन कहा जाता है। प्रकृति और समाज में अनेक प्रकार की घटनाएँ इस प्रकार ऊपर-नीचे आती रहती है; परंतु उसकी आगे जाने की दिशा एक ही स्तर पर रहती है। वह ऊर्ध्वगामी नही उदाहरण - ऋतुचक्र।

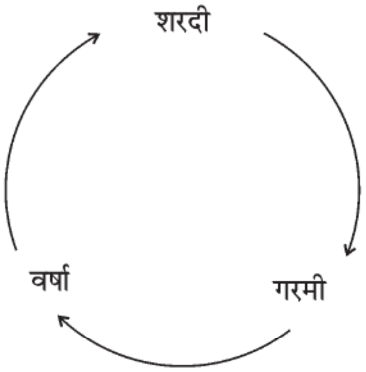

इसी तरह फैशन और मूल्यों में आते परिवर्तनों का इसमें समावेश होता है। तो अनेक विचारक मानव संस्कृति के उद्‌गम-विकास-पतन को भी इस स्वरूप में लेते हैं। संक्षेप में इस तरह का परिवर्तन घड़ी के काँटे की तरह चलता है।

समाजशास्त्र के अन्य मुद्दों के साथ सामाजिक प्रक्रिया और सामाजिक परिवर्तन खूब ही महत्त्व का है हमने सामाजिक प्रक्रिया का विचार स्पष्ट करके सामाजिक क्रिया की जानकारी प्राप्त की जो आपको मानव का व्यवहार समझनें में उपयोगी होगा। इसके अलावा आपके आस-पास दैनिक जीवन में अनुभव किये जाने वाले सहयोग, स्पर्धा, संघर्ष की जानकारी प्राप्त की, आंतरक्रियाओं की संकल्पना स्पष्ट की । समाज में खुलापन कितना है यह देखने के लिए गतिशीलता को समझा साथ ही समाज में चलती अविरत प्रक्रिया जैसे सामाजिक परिवर्तनों को भी आपने देखा होगा।

उपर्युक्त सभी प्रक्रियाओं को समाजशास्त्रीय रूप से समझने के बाद यह स्पष्ट हो गया होगा कि समाज के निर्माण में और समाज को गतिशील रखने के लिए इस प्रक्रिया का बहुत ही महत्त्व है। समाज की सामाजिक प्रक्रियाओं के बदलने की गतिविधि पर संस्कृति और सामाजीकरण प्रभाव डालते हैं; जिसकी जानकारी अब हम आगे की इकाई में प्राप्त करेंगे।

स्वाध्याय

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर विस्तार से दीजिए :

(1) सामाजिक क्रिया के तत्त्वों की जानकारी दीजिए।

(2) सामाजिक आंतरक्रिया के लक्षण स्पष्ट कीजिए।

(3) सामाजिक आंतर क्रिया के स्वरूप के रूप में सहयोग की चर्चा कीजिए।

(4) सामाजिक गतिशीलता के प्रकार समझाइए।

(5) सामाजिक परिवर्तन के लक्षणों का वर्णन कीजिए।

2. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर मुद्दासर दीजिए :

(1) सामाजिक आंतरक्रिया के स्वरूप के रूप में - स्पर्धा।

(2) सामाजिक आंतरक्रिया के स्वरूप के रूप में - संघर्ष।

(3) सामाजिक गतिशीलता के लक्षण।

(4) सामाजिक परिवर्तन का स्वरूप।

3. निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षेप में उत्तर लिखिए :

(1) सामाजिक प्रक्रिया की व्याख्या दीजिए।

(2) सामाजिक क्रिया की संकल्पना स्पष्ट कीजिए।

(3) सामाजिक आंतरक्रिया की व्याख्या दीजिए।

(4) सामाजिक गतिशीलता अर्थात् क्या?

(5) सामाजिक परिवर्तन अर्थात् क्या?

4. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक-एक वाक्य में दीजिए :

(1) पार्सन्स किस क्रिया को सामाजिक क्रिया कहते हैं?

(2) सामाजिक आंतर क्रिया के लिए कौन-सी बात आवश्यक है?

(3) 'स्व' अर्थात् क्या ?

(4) ध्येय (उद्देश्य) अर्थात् क्या?

(5) शर्त अर्थात् क्या?

(6) प्रत्यक्ष और परोक्ष स्पर्धा किसे कहते हैं?

(7) आडी (तिरछी) गतिशीलता अर्थात् क्या?

(8) खड़ी (सीधी) गतिशीलता अर्थात् क्या?

(9) ध्येय निश्चित करने में कौन-सी बातें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं?

5. निम्नलिखित विकल्पों में से सही विकल्प चुनिए :

(1) समाज को सजीव और गतिशील कौन रखता है?

(अ) समूह (ब) सामाजिक प्रक्रिया (क) सामाजिक संबंध (ड) संस्कृति

(2) सामाजिक आंतरक्रिया द्वारा क्या उद्भव होता है?

(अ) रोजगार (ब) संस्कृति

(क) सामाजिक संबंध (ड) तीनों में से एक भी नहीं

(3) सामाजिक प्रक्रिया किस विविधता के साथ संलग्न है?

(अ) सांस्कृतिक (ब) जैविक (क) भौगोलिक (ड) एक भी नही

(4) मानव व्यवहार का चालक बल कौन-सा है?

(अ) समाज (ब) साधन (क) ध्येय (ड) एक भी नहीं

(5) किस समूह में प्रत्यक्ष सहयोग केन्द्र में होता है?

(अ) प्राथमिक (ब) द्वितीयक (क) समुदाय (ड) एक भी नहीं

(6) गतिशीलता की प्रक्रिया क्या सूचित करती है?

(अ) स्थगितता (ब) अवरोध (क) स्थान परिवर्तन (ड) एक भी नहीं

(7) सामाजिक रचना का खुलापन जाँचने के लिए किसका अध्ययन करना जरूरी है?

(अ) गतिशीलता (ब) सामाजीककरण (क) संस्कृति (ड) एक भी नहीं

प्रवृत्ति

- समाजशास्त्र की इस पाठ्यपुस्तक में दिखाई देती सामाजिक प्रक्रियाओं की सूची तैयार कीजिए।
- समाज में पायी जानेवाली सांस्कृतिक विविधताओं का चार्ट तैयार कीजिए।
- विद्यार्थी जीवन में शिक्षण के उद्देश्य प्राप्ति के लिए विविध प्रवृत्तियों के उदाहरणों पर चर्चा कीजिए।
- दैनिक आंतर क्रिया द्वारा पद-भूमिका की संकल्पना की जाँच कीजिए।
- समाज में आप कौन-कौन-सी भूमिका निभाते हो। उसकी सूची तैयार कीजिए।
- आपके क्षेत्र में चलती सहयोग की प्रवृत्ति की यात्रा कीजिए।
- समाज के लिए स्पर्धा के लाभ-हानियों पर समूह चर्चा कीजिए।
- सामाजिक परिवर्तन की संकल्पना स्पष्ट करते हुए समाचार पत्रों में आते फोटोग्राफ्स का एलबम कीजिए।
- आधुनिक समय में आये परिवर्तनों से समाज को होने वाले लाभ-हानियों पर समूह चर्चा कीजिए।

●

5 संस्कृति और सामाजीकरण

प्रस्तावना

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। अपने दैनिक जीवन में प्रत्येक मनुष्य दूसरे पर निर्भर रहता है। व्यक्ति-व्यक्ति के बीच यह संबंध की नीव की रचना करता है। हमने आगे के अध्याय में मानव समाज को समझने का प्रयत्न किया। मानव समाज और प्राणी समाज के बीच कोई मूलभूत अंतर है तो वह संस्कृति है। मानव समाज में संस्कृति होती है, जबकि प्राणी समाज में इसका अभाव होता है। संस्कृति ही मानव समाज की अद्वितीय लाक्षणिकता है। इस प्रकार समाजशास्त्र के अध्ययन के लिए मानवसमाज और प्राणी समाज के बीच अंतर उत्पन्न करते महत्त्वपूर्ण तत्त्व के रूप में संस्कृति का अर्थ और लक्षण समझना आवश्यक है, क्योंकि मनुष्य का व्यवहार, आंतरक्रिया, सामाजिक संबंध, स्तर, भूमिका, समूह और संस्थाएँ तथा सामाजीकरण जैसी प्रक्रियाएँ संस्कृति द्वारा प्रभावित होती हैं।

सामाजीकरण एक सतत चलनेवाली प्रक्रिया है। इसलिए समाज में अलग-अलग वाहक होते हैं। इसका अध्ययन हम इस इकाई में करेंगे।

संस्कृति का अर्थ (Culture)

सरल शब्दों में 'संस्कृति अर्थात जीवन जीने का तरीका।'

19 वीं सदी में संस्कृति शब्द लोगों की जीवनशैली के रूप में उपयोग होने लगा। फिर चाहे यह जीवनशैली किसी भी स्वरूप की हो तो भी वह संस्कृति के रूप में जानी जाती है। यह जीवनशैली ग्रामीणों की, शहरी लोगों, आदिवासी लोगों की, गोरे लोगों की हो, हिन्दुओं या मुस्लिमों की हो या फिर आधुनिक सामाजिक जीवन जीनेवाले लोगों की हो। संक्षेप में, संस्कृति अर्थात् जीवनशैली ऐसा अर्थ 19 वीं सदी में हुआ। बीसवीं सदी में संस्कृति शब्द समग्र सामाजिक विरासत के अर्थ में उपयोग होने लगा। सांस्कृतिक विरासत अर्थात् लोगों के सामूहिक जीवन की विशिष्ट जीवनशैली। जीवनशैली में समाज के सदस्यों द्वारा प्राप्त ज्ञान, मान्यताएँ, रिवाज कुशलता आदि का समावेश होता है। संस्कृति में मात्र कला, संगीत और साहित्य की पद्धतियों और युक्तियों का ही समावेश नहीं होता; परंतु मकान बनाना, कपड़े सिलना, मिट्टी के बर्तन बनाने में उपयोग में ली जानेवाली पद्धतियों और प्रयुक्तियों का भी संस्कृति में समावेश होता है।

संस्कृति की व्याख्या

विश्व प्रसिद्ध मानवशास्त्री मेलिनोवस्की के मतानुसार, ''संस्कृति यह विरासत में मिले औजार, साधन, हथियार, चीज-वस्तुएँ, तकनीकि प्रक्रियाएँ, विचार, आदतें तथा मूल्यों की बनी हुई हैं।''

समाजशास्त्री टाईलर के मतानुसार, ''समाज के सदस्य के रूप में मनुष्य द्वारा प्राप्तज्ञान, मान्यताएँ, कला, कायदे-कानून, नीति-नियम, रीति रिवाजों तथा अन्य सभी शक्तियों तथा आदतों का बना संकुल अर्थात् संस्कृति।''

संस्कृति के लक्षण

संस्कृति के लक्षण निम्नानुसार हैं :

(1) संस्कृति जीवनशैली है।

(2) संस्कृति यह सीखा हुआ व्यवहार है।

(3) संस्कृति मनुष्य के समाजजीवन की शुरुआती पैदाइश है।

(4) सातत्य, विकासशीलता और परिवर्तनशीलतावाली है।

(5) संस्कृति हस्तांतरित हो सकती है।

(6) संस्कृति का संरक्षण होता है।

संस्कृति के प्रकार

मानव समाज के बौद्धिक, आध्यात्मिक और कलात्मक विरासतों को हम समाज की संस्कृति के रूप में जानते हैं। समाजशास्त्री 'ओगबर्न' संस्कृति को दो भागों में बाँटते हैं : (1) भौतिक संस्कृति (2) अभौतिक संस्कृति।

(1) भौतिक संस्कृति : 'भौतिक संस्कृति' अर्थात् संस्कृति का 'भौतिक सामग्री संबंधित पक्ष'। जो पदार्श हम देख सके स्पर्श कर सकें वे सब भौतिक संस्कृति है। मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सम्यता के प्रारंभ से भौतिक वस्तुओं का उत्पादन किया है। समाजशास्त्री रोबर्ट बस्टिड्र्ट ने भौतिक सामग्री, यंत्रों, साधनों, बर्तनों, मकानों, मार्गों पुल, कलाकृति, वस्त्र, वाहन, रेल पट्री, खाद्यसामग्री, दवाएँ आदि का समावेश किया है। मनुष्य के अस्तित्व में ये सभी भौतिक सामग्री महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इस सामग्री को प्राप्त करने के लिए मनुष्य प्रयत्न करता है। इन प्रयत्नों के कारण उसके दूसरे मनुष्यों के साथ संबंध मजबूत होते हैं।

(2) अभौतिक संस्कृति : समाजशास्त्री अभौतिक संस्कृति को भौतिक संस्कृति जितनी ही महत्त्वपूर्ण मानते हैं और उसे अधिक महत्त्व देते हैं। अभौतिक संस्कृति ऐसे तत्त्वों की बनी है जिनमें भौतिक अस्तित्व नहीं होता। उसे दो उप विभागों में बाँट सकते हैं : (अ) बोधनात्मक (ब) मानदंडात्मक।

(अ) बोधात्मक : बोधात्मक संस्कृति अर्थात् प्रकृति में से कृतियाँ बनाने का कोई एक निश्चित साधन का उपयोग किस तरह करना इस संबंधी ज्ञान।

(ब) मानदंडात्मक : मानदंडात्मक संस्कृति नियमों, मूल्यों और मान्यताओं की तथा विचारों और वस्तुओं पर समाज द्वारा लादें 'ऐसा करो' और 'ऐसा न करो' के संबंधित निर्णयों से बनी होती है।

लोकरीतियों, रूढ़ियों, निषेधों कानून आदि अनेक महत्त्वपूर्ण मानदंड है। लोकरीतियाँ अर्थात् समाज द्वारा सहज रूप से स्वीकारी और समाज में प्रचलित बनी वर्ताव-व्यवहार की पद्धति। उदाहरण - किसी को सम्मान देने के लिए हाथ जोड़ना अथवा नमस्कार करना। रूढ़ियाँ अर्थात ऐसी लोकरीतियाँ कि जिन्हें लोककल्याण की दृष्टि और समाज की नीतिमत्ता बनाए रखने में अत्यंत महत्त्व दिया जाता है। उदाहरणतया भाई-बहिन का विवाह अनैतिक मानने का नियम समाज द्वारा स्वीकृत रूढ़ि है। कानून अर्थात् राज्य की अदालत द्वारा स्वीकार किया गया, अर्थघटन किये हुए, और निश्चित परिस्थितियों में लागू किये नियम। उदाहरण - सन् 1954 में भारत में हिन्दू स्पेश्यल मैरेज एक्ट, संपत्ति संबंधित कानून आदि। कानून भंग करने के बदले चेतावनी से मृत्युदंड तक की सजा है।

सभ्यता (Civilization)

सभ्यता के अर्थ के संबंध में भिन्न-भिन्न दृष्टिबिंदु प्रवर्तमान है। संस्कृति तथा सभ्यता के बीच बहुत बड़ा फर्क भी नहीं है फिर भी इन दोनों के बीच सूक्ष्मभेद के संबंध में हम अवहेलना नहीं कर सकते।

सभ्यता का अर्थ

'संस्कृति अर्थात् जीवन जीने का तरीका, जिसमें ज्ञान, मान्यता, कला, नीति, कानून रिवाज आदि के द्वारा जो प्राप्त किया उसे और सभ्यता अर्थात् प्राप्त की हुई जीवन से जुड़ी हुई ऐसी सभी बातों का समूह और सामाजिक व्यवस्था जो मनुष्य को अन्य प्राणियों से अलग करती है। उदाहरण - सिंधुघाटी सभ्यता।

संस्कृति और सभ्यता के बीच अंतर प्रस्तुत करते समाजशास्त्री मेकाईवर बताते हैं कि 'समाज की मूल्यांत्मक सर्जन संस्कृति है।' उदाहरण साहित्य, शिल्प, कला आदि। हम जो हैं वह सभ्यता और हमारे पास जो है वह संस्कृति।

सभ्स्यता की प्रक्रिया से निश्चित उद्देश्य सिद्ध करने के लिए पद्धतियों का विकास होता है। उदाहरणतया - प्राचीन समय में लोग अग्नि जलाने के लिए पत्थरों का उपयोग करते थे, जबकि आधुनिक मानव अग्नि प्राप्त करने के लिए दियासलाई या लाईटर का उपयोग करते हैं। यहाँ पत्थर तथा दियासलाई 'साधन' के रूप में जाने जाते हैं। इस प्रकार 'अग्नि'

जलाने के लिए पत्थर से दियासलाई का विकास हुआ, और विकास में से मनुष्यों द्वारा प्राप्त संतोष सभ्यता कहलाता है। मनुष्य अपनी स्थिति सुधारने के प्रयास में कलाकौशल (तकनीकि) और भौतिक साधन जैसी उपयोगी वस्तुओं का 'सभ्यता' में समावेश होता है।

सभ्यता का कार्यक्षेत्र

सभ्यता के कार्यक्षेत्र को दो विभागों में बाँटा जा सकता है। (1) यांत्रिक संगठन तथा (2) सामाजिक संगठन।

यांत्रिक संगठन में भौतिक तथा टेक्निकल साधनों का समावेश होता है। दृष्टांत के रूप में परिवहन के साधन, टेलीविजन, गाड़ी, पंखे, रास्ते, रेलवे आदि का समावेश होता है।

जबकि सामाजिक संगठन मनुष्य के व्यवहार तथा विकास का नियमन करता है। उसमें समूह, परिवार, सामाजिक आंदोलन जाति तथा वर्ग व्यवस्था जैसी सामाजिक तथा आर्थिक संस्थाओं का समावेश होता है।

सामाजीकरण (Socialization)

समाज की रचना करने में मानव संबंध अति आवश्यक है। ये संबंध मनुष्य के बचपन से ही शुरू होते हैं, और मनुष्य के जीवन के अंत तक चलते रहते हैं। इन संबंधों को विकसित, करने की प्रक्रिया को सामाजीकरण कहते हैं। दूसरे अर्थो में मनुष्य की सीखने की प्रक्रिया को सामाजीकरण की प्रक्रिया के रूप में जाना जाता है।

सामाजीकरण का अर्थ

सामाजीकरण एक प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया मनुष्य के जीवनकाल तक सतत चलती रहती है। सरल शब्दों में कहें तो ''जैविक व्यक्ति को सामाजिक व्यक्ति बनानेवाली प्रक्रिया'' सामाजीकरण के रूप में जानी जाती है। सामाजीकरण के परिणाम स्वरूप व्यक्ति समाज के एक सदस्य के रूप में सामाजिक अपेक्षाओं के अनुसार जीवन जीना सीखता है। सामाजीकरण बालक को समाज के मानदंडों, मूल्यों, मान्यताओं, भूमिकाओं और व्यवहार की पद्धति सिखाती एक प्रक्रिया है। सामाजीकरण होते हुए बालक अपने समाज के सांस्कृतिक ढाँचे में जुड़ता है। सामाजिक अपेक्षाएँ पूर्ण करने में वह समर्थ बनता है। इस तरह सामाजीकरण बालक के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन का निर्माण करती हुई प्रक्रिया है।

सामाजीकरण यह एक ऐसी आंतरक्रिया की प्रक्रिया है, कि जिसके द्वारा व्यक्ति, आदतें, कौशल, मान्यताएँ तथा विवेक बुद्धि का ज्ञान अर्जित करता है, जो सामाजिक समूहों तथा संप्रदायों में प्रभावकारी हिस्सेदारी के लिए आवश्यक माना गया है। सामाजीकरण के बिना समाज अपने आप चालू नहीं रह सकता अथवा संस्कृति का अस्तित्व नहीं रह सकता।

सामाजीकरण की परिभाषा

समाजशास्त्रियों ने सामाजीकरण की व्याख्या निम्नानुसार दी है :

किंग्स्ले डेविस ''नवजात बालक का सामाजिक व्यक्ति के रूप में निर्माण करने की प्रक्रिया को सामाजीकरण कहते हैं।''

होर्टन और हन्ट ''सामाजीकरण एक ऐसी आंतरक्रिया की प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति अपने समूह के मानदंड अपने जीवन में उतारता है, जिसके परिणाम में एक विशिष्ट 'स्व' जन्म लेता है।''

सामाजीकरण के वाहक

व्यक्ति के जीवन में बचपन से लेकर अंत तक अनेक एजंसियाँ उसका सामाजीकरण करती है उनमें परिवार, मित्र, समूह तथा विद्यालय विशेष उपयोगी होते हैं। अब हम इन एजंसियों की भूमिका समझेंगे।

(1) परिवार : विश्व की तमाम संस्कृतियों में परिवार सामाजीकरण की नींव और महत्त्वपूर्ण माध्यम है। बालक सर्व प्रथम परिवार के ही संपर्क में आता है। माता-पिता और भाई बहन के संबंधों द्वारा बालक एक जैविक व्यक्ति से सामाजिक व्यक्ति बनता है। अधिकतर संस्कृतियों में कुटुंब में माता की भूमिका सामाजीकरण की प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती

है। माता या पिता (Single Parent) का प्रेम, वात्सल्य, शाबासी आदि बालक के मन में सामाजिक तथा मानसिक सलामती की भावना उत्पन्न करते हैं, जो व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास में महत्त्व की है। परिवार बालक को उसके व्यवहार के लिए मार्गदर्शन, रचना और निश्चित और स्पष्ट मानदंड की पूर्ति करता है। और वे मानदंड समझाकर या दबाव से अमल करवाता है। बालक को अपने भाई-बहनों के साथ समानता के संबंध परिवार से ही मिलते हैं।

परिवार

परिवार बालक को समाज नींव के मूल्य, मानदंड और वर्ताव-व्यवहार का तरीका सिखाता है। परिवार उसे समाज के लोकाचार, परंपरा, रूढ़ि-रिवाज आदि का ज्ञान देता है। इस प्रकार परिवार बालक को सांस्कृतिक विरासत की सबसे आवश्यक और सभी महत्त्वपूर्ण बातें सामाजीकरण द्वारा सिखाता है।

आधुनिक समय में घर के बाहर काम करने वाली माता पर बालक के सर्वांगीण विकास की अनेक जिम्मेदारियाँ बढ़ जाती हैं। परिवार की संस्कृति और आर्थिक स्थिति सामाजीकरण की प्रक्रिया पर प्रभाव डालती है उदाहरण - रूढ़िचुस्त परिवार में विकसित बच्चों और खुले विचारोंवाले परिवार में विकसित बालकों में अंतर पाया जाता है।

(2) मित्रसमूह : बच्चे के सामाजीकरण के लिए परिवार के बाद दूसरी एजंसी है उसका मित्र समुदाय। परिवार के बहार बालक अपने समवयस्क मित्रों के साथ आंतरक्रिया में जुड़ता है। ऐसा मित्र समूह भी बालक का सामाजीकरण करता है। इस मित्रसमूह के निकटवर्ती होकर बालक अपने मित्रों के साथ संबंध गाढ़; वैयक्तिक और सहानुभूतियुक्त होते हैं। उनसे बालक बातचीत, शिष्ट, व्यवहार, नियम, मानदंड आदि सीखता है। ऐसा मित्रसमूह पड़ोस में भी होता है और विद्यालय में भी होता है। बालक के अपने मित्रों के साथ के संबंधों में 'लोकतांत्रिक' और 'समानतायुक्त' वातावरण का महत्त्व है। इन संबंधों में सत्ता और अधीनता है; परंतु समानता भाव होते है। खेल-कूद और खेल के दरम्यान कौशल और उसके नियमों के पालन द्वारा व्यापक समाज में कानून और मानदंडों का पालन किस तरह करना है उसका भी बालक को ख्याल आता है। मित्रसमूह के सदस्य होने से बालकों में परस्पर सहयोग की भावना उत्पन्न होती है। उनमें एक-दूसरे छूट देने की भावना भी विकसित होती है।

मित्रसमूह

बालक के मित्रसमूह यदि समाज के मानदंडों या नियमों का पालन करते हों तो वे बालक के सामाजीकरण में प्रभावकारी साधन बनते हैं। बालकों का एक-दूसरे पर अधिक प्रभाव पड़ता है। मित्रसमूह की अच्छी आदतों, विचारों, जानकारी, ज्ञान अच्छा व्यवहार आदि सीखतें हैं। जैसा संग वैसा असर सामाजीकरण को सचोट रूप से व्यक्त करता है।

(3) पाठशाला : पाठशाला तो औपचारिक व्यवस्था है। उसमें निश्चित पाठ्यक्रम होता है। उसके संदर्भ में विद्यार्थी का सामाजीकरण होता है। पाठशाला बालक को अनेक बुनियादी कौशलों और विविध विषयों का आधारभूत ज्ञान देती है। पाठशाला समाज की अर्थव्यवस्था, राज्य व्यवस्था, समाजव्यवस्था और महत्त्वपूर्ण समस्याओं का बालक को परिचय कराती है।

पाठशाला

पाठशाला व्यावसायिक प्रशिक्षण देकर बालक को व्यवसायी भूमिका और सामाजिक गतिशीलता के लिए तैयार करती है।

पाठशाला, पाठ्येत्तर प्रवृत्तियों द्वारा बालकों को अलग-अलग आचार विचार और महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों से मुलाकात करवाकर विविध अनुभव देती है। पाठशाला बालक में सिद्धि प्रेरणा जागृत करती है, जो आधुनिक समाज के विकास के लिए बहुत ही आवश्यक है। इस प्रकार एक औपचारिक माध्यम के रूप में पाठशाला नई पीढ़ी के सामाजीकरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

बीच में ही पाठशाला छोड़नेवाले बालक पाठशाला द्वारा होने वाले सामाजीकरण के लाभ से वंचित रहते हैं।

(4) समूह माध्यम (मास-मीडिया) : 18 वीं सदी के अंत से लेकर आज पर्यंत विश्व में अखबार सामयिक जैसे मुद्रित माध्यमों का अविरत विकास होता रहा है। वर्तमान समय में दूरदर्शन तथा इन्टरनेट जैसे साधनों ने जानकारी तथा मनोरंजन प्राप्त कराने की त्वरित तथा प्रभावकारी सुविधाएँ उपलब्ध कर दी है। अखबार, रेडियो, टेलीविजन इन सब को अंग्रेजी में Mass Media (मास-मीडिया) के नाम से जाना जाता है। गुजरात में हम इन्हें प्रत्यायन के माध्यम के रूप में जानते हैं। हम सबके सामाजीकरण के लिए मास-मीडिया की प्रभावकारी भूमिका रही है। विविध प्रकार की जानकारी देकर ये माध्यम बाल-वृद्ध सभी के ज्ञान में वृद्धि कराते हैं साथ ही साथ हमारे मंतव्य, मान्यताएँ, विचारों आदर्शों आदि की लोग समझ प्राप्त करके अपना सामाजीकरण कर सकते हैं। मुद्रित माध्यम साक्षर लोगों को ही प्रभावित करते हैं। जबकि दृश्य-श्राव्य माध्यम साक्षर, निरक्षर और दूर-दराज के लोगों पर भी प्रभाव डालते हैं।

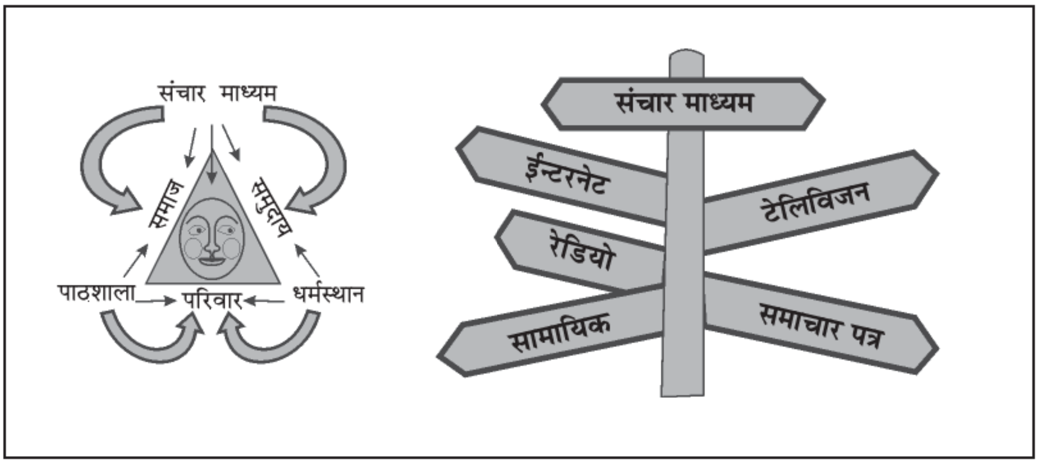

संचार माध्यम

दूरदर्शन के कार्यक्रम मनोरंजन के साथ ज्ञान भी देते हैं। दूरदर्शन द्वारा प्राप्त जानकारी, प्रसंगों, व्यवहार, आचरण आदि लंबे समय तक याद रहते हैं। बालक टेलीविजन के कार्यक्रमों से विशेष प्रभावित होते हैं टेलीविजन द्वारा प्रसारित होते विज्ञापन व्यक्ति को आधुनिक युग की अलग-अलग वस्तुओं और सेवाओं के ग्राहक बनाते हैं। वर्तमान समय में इन्टरनेट और सोश्यल मीडिया भी सामाजीकरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

माध्यम हमारे समाज में रहनेवाले अलग-अलग समूहों, संस्कृतियों, समस्याओं, प्रक्रियाओं आदि सम्बन्धित जानकारी और ज्ञान की पूर्ति करते है। इनके द्वारा व्यक्तियों का सामाजीकरण होता है।

(5) सामाजीकरण के अन्य वाहक : परिवार, मित्र समूह, पाठशाला संचार माध्यमों जैसे सामाजीकरण के महत्त्वपूर्ण वाहकों के उपरांत अन्य वाहकों से हम परिचित हों।

व्यक्ति का कार्यस्थल सामाजीकरण करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। व्यवसाय या नौकरी के लिए व्यक्ति को अलग-अलग स्थानों पर जाना होता है। कारखाना, ऑफिस, बाजार आदि स्थलों की भी सामाजीकरण की प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। आधुनिक औद्योगिक समाज में शिक्षण और विज्ञान के विकास के कारण विशेष करके शहरों में पुरुष और स्त्रियों में सामाजीकरण तेजी से होता है।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है; यह वास्तविकता समझने के लिए इस प्रकरण में हम 'संस्कृति और सामाजीकरण' को समझने का प्रयत्न किया। जैविक व्यक्ति का सामाजिक व्यक्ति के रूप में रूपांतर करती सामाजीकरण की प्रक्रिया और उनकी महत्त्वपूर्ण एजन्सियों जैसे कि परिवार, पड़ोस समूह, पाठशाला, मित्रसमूह, संचार माध्यम आदि की जानकारी प्राप्त की मनुष्य के सर्वांगीण सामाजीकरण में समाज की विविध संस्थाओं की भूमिका अग्रगण्य रही है इन सभी सामाजिक संस्थाओं की जानकारी आगे की इकाईयों में प्राप्त करेंगे।

स्वाध्याय

1. निम्नलिखित प्रश्नों के सविस्तार उत्तर दीजिए :

(1) संस्कृति की व्याख्या देकर, उसके प्रकार उदाहरण सहित समझाइए।

(2) सामाजीकरण अर्थात क्या? सामाजीकरण का एजन्सी के रूप में 'परिवार' और 'मित्र समूह' की भूमिका समझाइए।

2. निम्नलिखित प्रश्नों के मुद्दासर उत्तर दीजिए :

(1) सभ्यता का अर्थ स्पष्ट करके उसका कार्यक्षेत्र समझाइए।

(2) सामाजीकरण के महत्त्वपूर्ण वाहक (एजन्सी) के रूप में समूह माध्यमों की जानकारी दीजिए।

(3) सामाजीकरण का महत्त्वपूर्ण वाहक (एजन्सी) के रूप में ''पाठशाला'' की जानकारी दीजिए।

3. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दीजिए :

(1) सभ्यता की व्याख्या दीजिए।

(2) भौतिक संस्कृति अर्थात् क्या? उसमें किन-किन बातों का समावेश होता है?

(3) प्रत्यायन के माध्यमों को समझाइए।

(4) संस्कृति के लक्षण बताइए।

4. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक-एक वाक्य में दीजिए :

(1) संस्कृति अर्थात् क्या?

(2) मानवशास्त्री में मेलिनोवस्की ने संस्कृति की क्या व्याख्या दी है?

(3) टाईलर द्वारा दी गयी 'संस्कृति' की व्याख्या दीजिए।

(4) सभ्यता अर्थात् क्या?

(5) सामाजीकरण किसे कहा जाता है?

(6) किंग्सले डेविस द्वारा दी गयी सामाजीकरण की व्याख्या बताइए।

(7) बालकों और मित्रों के बीच के संबंधो में कैसे वातावरण का महत्त्व है?

5. निम्नलिखित विकल्पों में से सही विकल्प चुनिए :

(1) समाज में मानदंड और मूल्य मिलकर किसकी रचना होती है?

(अ) परिवार (ब) राज्य (क) व्यक्ति (ड) संस्कृति

(2) भौतिक संस्कृति में किस बात का समावेश होता है?

(अ) मकान (ब) धर्म (क) साहित्य (ड) कला

(3) भौतिक संस्कृति में किसका समावेश होता है?

(अ) भोजन (ब) भाषा

(क) वस्त्र (ड) परिवहन के साधन

(4) विश्व की सभी संस्कृतियों में सामाजीकरण की नींव का काम कौन करता है?

(अ) परिवार (ब) राज्य (क) व्यक्ति (ड) संस्कृति

(5) प्रत्यायन के माध्यम के रूप में किसे पहचाना जाता है?

(अ) टेलीविजन (ब) परिवार (क) पाठशाला (ड) मित्र समूह

(6) मानवसंबंधों को विकसित करनेवाली प्रक्रिया क्या कहलाती है?

(अ) सामाजीकरण (ब) वातावरण (क) परिवार (ड) समाज

प्रवृत्ति

- पाठशाला बालक का सामाजीकरण किस तरह करती है, इस संदर्भ में विद्यार्थियों के विचार जानने हेतु चर्चा सभा का आयोजन कीजिए।
- आधुनिक समय में बालक पर 'संचार माध्यमों का प्रभाव' निबंध स्पर्धा का आयोजन कीजिए।
- आपके क्षेत्र में रहने वाले लोगों में पायी जाने वाली भिन्न भिन्न संस्कृतियों के लक्षणों की सूची तैयार कीजिए तथा संभव हो तो इस संबंध में फोटोग्राफ भी एकत्रित करके उसकी छोटी प्रदर्शनी की योजना बनाइए।

●

6 भारत की मौलिक सामाजिक संस्थाएँ

प्रस्तावना

विद्यार्थी मित्रो पहले के अध्याय में आपने समाज, समुदाय, मंडल, जाति, वर्ग के विषय में अध्ययन किया। इस प्रकरण में हम सामाजिक संस्था के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे। समाज में विवाह, परिवार, जाति जैसी अनेक सामाजिक संस्थायें हैं। समाजशास्त्र, सामाजिक संस्थाओं का अध्ययन करता है। कोई भी व्यक्ति जीवन अनियमित रूप से नही, बल्कि संस्थाकीय संरचना में रहकर जीता है। व्यक्ति समाज के सदस्य रूप में जो कोई भी क्रिया कलाप करता है वह विभिन्न संस्थाओं द्वारा ही संभव है। विवाह, परिवार, जाति जैसी संस्थायें मनुष्य को प्रवृत्ति करने का व्यवहार सिखाती है। व्यक्ति का सामाजीकरण भी संस्थाओं द्वारा होता है। सामाजिक संस्थाये समाज रचना की नींव है और व्यक्ति और समाज की अनेक प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति के प्रयास से संस्थाओं का उद्भव होता है। इस कारण से उसका आधार टिका रहता है। जबकि समयानुसार उसकी रचना, कार्य और स्वरूप में परिवर्तन आता रहता है।

सामाजिक संस्था (Social Institution)

सामाजिक संस्था की परिभाषा : सामाजिक संस्था एक प्रस्थापित कार्य प्रणाली है। जो समाज में लोगों की परस्पर भूमिका और व्यवहार करने के तरीके को निश्चित करता है। ऐसे व्यवहार का तरीका लोगो की आवश्यकता पूर्ण करने में सहायक बनता है। इस कारण से मेकाईवर और पेज, ''समूह क्रिया कलापों की प्रस्थापित कार्य प्रणाली'' के रूप में जानते हैं। इसी प्रकार जॉनसन संस्था को ''किसी विशेष प्रकार के सामाजिक संबंधों को प्रभावित करने के स्तरीय तरीका'' के रूप में जाना जाता है।

इस प्रकार उपरोक्त व्याख्याओ के आधार पर कह सकते है कि संस्था निश्चित कार्य प्रणाली है और ये कार्य प्रणालियाँ लोक रीति, लोकनीति सामाजिक स्तरो द्वारा प्रस्थापित हुई रहती है। इस कारण से सर्व स्वीकृत होती है और इसके द्वारा लोगो की आवश्यकताये पूर्ण होती है।

सामाजिक संस्था के लक्षण : प्रत्येक संस्था की उसकी विशेष विशिष्टता होती है। इसके पश्चात् भी सभी सामाजिक संस्थाओं में सर्वसामान्य लक्षण होते हैं।

(1) आचरण और व्यवहार का तरीका : संस्था व्यक्तियों के आचरण और व्यवहार के तरीके को व्यक्त करता है। उदाहरणार्थ – परिवार में आपसी प्रेम, वफादारी, सम्मान की भावना और जिम्मेदारी की आचरण व्यक्त होता है। इस आचरण के अनुसार परिवार के सदस्यों का आपसी व्यवहार का रूख बनता है।

(2) सांस्कृतिक प्रतीक : संस्था का कोई विशेष सांस्कृतिक प्रतीक होता है। जो संस्था की पहचान प्रदान करता है। उदाहरणार्थ – राष्ट्रगान और राष्ट्रीय ध्वज ये राजकीय संस्था के प्रतीक हैं।

(3) साधन–सुविधा : संस्था अपना कार्य करने के लिए विशेष साधन–सुविधा रखता है। जिसे संस्था के उपयोग के लिए सांस्कृतिकआधार चिन्ह के रूप बताया जा सकता है। उदाहरणार्थ – परिवार के लिए घर, धर्म के लिए मंदिर इत्यादि।

(4) व्यवहार की कक्षा (स्तर) : संस्था लोक रिवाज, लोक नियम, लोक नीति और नियमों का संकुल है। विशेष प्रकार के सामाजिक संबंधों पर प्रभावी व्यवहार और भूमिका का मार्गदर्शन देनेवाली स्तर की व्यवस्था है। उदाहरणार्थ – परिवार में पति–पत्नी और बच्चों के आपसी संबंध और भूमिका निश्चित करनेवाला स्तर दिखाई देता है।

(5) विचारधारा : विचाराधारा यह विचारों मान्यताओं और स्तरों का समूह है। स्तर व्यक्ति को किसी तरह व्यवहार करना और किस तरह न करना ये दर्शाती है। विचारधारा स्तर पीठबल प्रदान करता है। विचारधारा संस्था की मूलभूत मान्यताओं और विचारों को व्यक्त करता है। उदाहरणार्थ – एकेश्वरवाद, अनेकश्वरवाद, यह धर्म की विचारधारा है।

परिवार संस्था (Family Institution)

परिवार का अर्थ : परिवार एक सार्वत्रिक सामाजिक संस्था है। जो कि अलग-अलग समय पर अलग-अलग समाजों में परिवार की स्वरूप, रचना, कार्य में अंतर होता है। मेकाईवर के मतानुसार, 'परिवार एक स्पष्ट और लम्बे समय तक स्थायी रहे ऐसी लैंगिक संबंधों के ऊपर बना समूह है और उसके द्वारा ही बाल प्रजनन और पालन पूर्ण होता है। परिवार का मुख्य विषय यह है कि यह समूह शादी, रक्त अथवा दत्तक संबंधों द्वारा अस्तित्व मे आता है।' आगबर्न के मतानुसार, 'परिवार एक बच्चेवाला या बच्चे विहीन पति पत्नी द्वारा बना हुआ कुछ अंश तक लम्बे समय का समूह है।' किंग्सले डेविस के कथनानुसार, 'परिवार एक ऐसा सामाजिक समूह है जिसके सदस्य प्रजनन प्रक्रिया द्वारा एक दूसरे से जुड़े होते हैं। इस प्रकार के संबंधों से जुड़े सदस्यों के अधिकार और फर्ज समुदाय के सामाजिक स्तर द्वारा निश्चित किया जाता है।'

परिवार के लक्षण

(1) स्त्री-पुरुष के मध्य लैगिंग संबंध : स्त्री-पुरुष की लैंगिक इच्छा की पूर्ति, वंशवृद्धि और सहजीवन से पैदा बच्चों का पालन और पोषण इन तीन उद्देश्यों से परिवार बनता है।

(2) विवाह प्रथा : स्त्री-पुरुष के बीच लैगिक संबंधों को समाज स्वीकृत करने के लिए विवाह प्रथा अनिवार्य माना गया है इस प्रकार विवाह प्रथा परिवार रचना का प्रथम सीढ़ी है। अलग-अलग समय पर अलग समाजों में सांस्कृतिक मूल्यों के अनुसार विवाह का स्वरुप अलग-अलग हो सकता है, लेकिन परिवार की तरह ही विवाह प्रथा सार्वत्रिक रूप से अस्तित्व में थी।

(3) सहजीवन : शादी के बाद पति-पत्नी एक घर में रहते हैं। इस तरह परिवार एक जगह एक साथ रहनेवाला समूह है। प्राय: पितृ प्रधान परिवार व्यवस्था अधिक प्रचलित है। जहाँ पर पत्नी शादी के बाद में पति के घर रहती है।

(4) वंशावली : प्रत्येक परिवार की उसके वंशावली की योजना होती है जिसके कारण परिवार के पूर्वजों और वंशजों के बीच का संबंध समझा जा सकता है। जिस समाज में परिवार मातृसत्तात्मक होता है वहाँ पर बच्चों की वंश गणना माता के नाम से होती है। पितृसत्तात्मक व्यवस्थावाले परिवार में परिवार रचना में वंश की गणना पिता के नाम से होती है। बच्चो को पिता के नाम से पहचाना जाता है। वर्तमान समय में माता और पिता दोनों के नाम संतान के नाम के पीछे लिखा जा सकता है।

(5) आर्थिक सहभागिता : अर्थव्यवस्था में सहयोगी होना यह परिवार का महत्त्वपूर्ण विषय है। परिवार के सदस्यों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए परिवार कुछ न कुछ व्यवस्था करता ही है। विशेषकर के प्रजनन और शिशुओं के पालन से लगी हुई आर्थिक आवश्यकता की पूर्ति की जिम्मेदारी परिवार उठाता है। यदि परिवार यह जिम्मेदारी न स्वीकारे तो नवजात शिशुओं का भरण-पोषण का प्रश्न कठिन बनता है तथा उनका पालन कठिन बन जाता है। सदस्यों के जीवन को सुरक्षित रखने के साथ कई आधारीय आर्थिक जिम्मेदारी सभाँलने के लिए प्रत्येक परिवार को विशेष प्रकार की आर्थिक क्रियाकलाप करना पड़ता है।

परिवार के प्रकार

परिवार को अनेक प्रकार की वंश, सत्ता, स्थान, एवं सहनिवास के आधार पर निम्नानुसार वर्गीकृत कर सकते हैं।

परिवार के प्रकार

- वंश का आधार
  - मातृवंशी
  - पितावंशी
- सत्ता का आधार
  - मातृसत्तात्मक
  - पितृसत्तात्मक
- स्थान का आधार
  - मातृस्थायी
  - पितृस्थायी
- सहनिवास का आधार
  - संयुक्त
  - विभक्त

(1) मातृवंशीय परिवार : इस प्रकार के परिवार में वंश गणना माता की ओर से प्राप्त होता है। संतान के नाम के पीछे माता का नाम लिखा जाता है। संपत्ति और सत्ता की विरासत माता की तरफ से स्त्री संतान को प्राप्त होता है। धार्मिकविधि विधान स्त्रियों द्वारा ही होता है।

(2) पितृवंशीय परिवार : इस प्रकार के परिवार में वंश गणना पिता के नाम से होती है। संतानों के नाम के पीछे पिता का नाम होता है। संपत्ति तथा सत्ता पुरुष संतान को पिता की तरफ से प्राप्त होता है। धार्मिक संस्कार भी पुरुष संतान द्वारा ही किया जाता है।

(3) मातृसत्तात्मक परिवार : इस परिवार में माता की सत्ता सर्वोपरि होती है अथवा माता ही परिवार का प्रमुख माना जाता है। ऐसे परिवार को मातृसत्तात्मक परिवार के रूप में जाना जाता है। जिसमें स्त्रियों को उच्चस्थान प्राप्त होता है। सामाजिक जीवन में आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्र में स्त्रियों का प्रभुत्व होता है। मातृसत्तात्मक परिवार कुछ अंश तक मातृवंशीय और मातृस्थानीय होते हैं। इन परिवार में संतानों की वंश गणना माता के नाम से होती है। और विरासत भी स्त्री संतान को मिलती है। विवाह के पश्चात् स्त्री अपने माँ के घर रहती है। पति को पत्नी के घर आ कर रहना पड़ता है। भारत के आदिमजाति समाज में खासी और गारो ये दो आसाम की मातृसत्तात्मक परिवार व्यवस्थावाली आदिम जातियाँ हैं। इसी प्रकार दक्षिण भारत में रहनेवाले नायरों में भी मातृसत्तात्मक परिवार व्यवस्था होती है।

(4) पितृसत्तात्मक परिवार : पितृसत्तात्मक परिवार में पुरुषों की सत्ता, स्थान और पद उच्च होता है। परिणाम स्वरूप आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्र में पुरुषों का प्रभुत्व होता है। पितृसत्तात्मक परिवार कुछ अंश तक पितृवंशीय और पितृस्थानीय होता है। इनको विरासत पिता की तरफ से पुत्र संतान को मिलती है। इस परिवार में पुत्र संतान का महत्त्व विशेष होता है। यदि पुत्र संतान न हो ऐसी अवस्था में नजदीकी रक्त संबंध से संतान दत्तक (गोद) लिया जाता है।

(5) मातृस्थानीय परिवार : इस प्रकार के परिवार में स्त्रियाँ माता की वारिसदार होती है और विवाह के बाद भी माता के साथ माता के परिवार में रहती हैं शादी के बाद अपनी पति को भी अपनी पत्नी के परिवार में आकर रहना पड़ता है। परिवार के सभी निर्णयों में स्त्री को प्रधानता दी जाती है।

(6) पितृस्थानीय परिवार : इस प्रकार के परिवार में पुरुष संतान पिता के वारिसदार होते है। विवाह के बाद स्त्री अपने पति के परिवार के साथ रहती है। परिवार के सभी कार्यों में पुरुष संतान का महत्त्व होता है।

(7) संयुक्त परिवार : संयुक्त परिवार में दो या उससे अधिक पीढ़ी के सदस्य एक साथ निवास करते हैं। एकसाथ का भोजन करते हैं परिवार की संपत्ति साझेदारी की मानी जाती है। परिवार का संचालन परिवार के बड़े माता या पिता द्वारा होता है। संयुक्त परिवार में परिवार के प्रमुख व्यक्ति के पास विशाल सत्ता होती है। उसका निर्णय अन्य सदस्यों द्वारा स्वीकार होता है। ऐसे परिवार में वृद्ध, विधवा, विकलांग कमजोर सदस्यों को सामाजिक सुरक्षा प्राप्त होती है।

संयुक्त परिवार

(8) विभक्त परिवार : विभक्त परिवार उसके आकार की दृष्टि से छोटा होता है। इसमें पति पत्नी और उनके अविवाहित संतानों को लिया जाता है। विभक्त परिवार में सत्ता मुख्य जिम्मेदार व्यक्ति के पास होता है। निर्णय सर्व संमति से लिया जाता है। व्यक्तिगत निर्णय की प्रधानता होती है। इस कारण से परिवार में विरोध कम होता है। विभक्त परिवार में स्त्रियों और बालकों को स्वतंत्रता मिलने के कारण व्यक्तिगत विकास के अधिक अवसर मिलते हैं। इसके बाद भी वर्तमान समय में अकेले माता और अकेले पिता वाला

परिवार भी मिलता है। 2011 की जनगणना के आधार पर भारत में कुल परिवारों में संयुक्त परिवार का प्रमाण 19 % (प्रतिशत) और विभक्त परिवार का प्रमाण 81 % (प्रतिशत) ज्ञात हुआ है। दक्षिण भारत के संपूर्ण चार राज्यों में संयुक्त परिवार का प्रमाण 10 % (प्रतिशत) ज्ञात हुआ है।

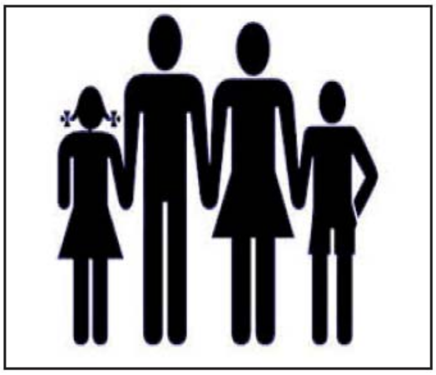

विभक्त परिवार

परिवार के कार्य

परिवार व्यक्ति और समाज के लिए अनेक कार्य करता है। व्यक्ति और समाज की आवश्यकताओं को पूर्ण करता है। परिवार द्वारा किए जानेवाले कार्य निम्नलिखित हैं :

(1) परिवार का जैविक कार्य : लैंगिक संतोष और प्रजनन इत्यादि कार्यों को परिवार के जैविक कार्यों में रखते हैं। स्त्री-पुरुष की लैंगिकवृत्ति की संतुष्टि परिवार में ही समाजमान्य और समाज स्वीकृत रूप से प्राप्त होता है। इसी प्रकार वंश वृद्धि का कार्य सातत्यता के लिए महत्त्वपूर्ण होता है। परिवार व्यवस्था इस कार्य का नियंत्रण करके स्थिरता लाती है।

(2) परिवार का मनोवैज्ञानिक कार्य : व्यक्ति का मात्र भौतिक आवश्यकताएँ ही नहीं परंतु सुरक्षा और प्रेम की मानसिक आवश्यकता भी परिवार से प्राप्त होती है। स्नेह, प्रेम, लगाव देकर व्यक्ति को मानसिक संतोष देता है। यह कार्य अन्य कोई और समूह इतना नहीं कर सकता है।

(3) परिवार का आर्थिक कार्य : कृषि अर्थव्यवस्था वाले सामाजिक व्यवस्था में परिवार उत्पादन का केन्द्र होता है। परिवार के भरण-पोषण और अर्थोपार्जन में पुरुषों और महिलाओं की सहभागिता दिखाई देती है और बच्चों का पालन और गृह संचालन का कार्य स्त्रियाँ करती हैं। जब कि आधुनिक औद्योगिक समाजव्यवस्था में परिवार अब आर्थिक उत्पादन का केन्द्र हो यह कम दिखायी देता है। परिवार के सदस्यों की भौतिक आवश्यकता परिवार पूरा कर रहा है।

(4) परिवार का सामाजिक कार्य : परिवार में होने वाले सामाजिक कार्यों में व्यक्ति को पारिवारिक संबंधों द्वारा प्राप्त निश्चित सामाजिक दर्जा मिलता है। उदाहरणार्थ परिवार में पुत्र या पुत्री के रूप में, भाई-बहन के रूप में, समाज में जो परिवार की प्रतिष्ठा होती है वह व्यक्ति को स्वयं मिल जाती है। दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य यह है कि व्यक्ति को सामाजिक जीवन जीने का प्रशिक्षण प्राप्त होता है। सामाजिक परंपरा और व्यवहार पद्धति बालक परिवार से सीखता है। उसी प्रकार परिवार बालक को सांस्कृतिक विरासत प्रदान करता है।

(5) परिवार के सांस्कृतिक कार्य : मानव समाज की सांस्कृतिक विरासत परिवार से मिलती है। समाज की सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण हेतु पीढ़ी दर पीढ़ी सांस्कृतिक विरासत का स्थानांतरण होता है। प्रत्येक परिवार अपने विशिष्ट जीवनशैली के द्वारा संस्कृति के अलग-अलग तत्वों को संजोये रखता है और अपने बच्चों को सिखाता है।

परिवार में आये परिवर्तन

आधुनिक काल में औद्योगिकीकरण, शहरीकरण, शिक्षा और संचार के साधनों जैसे अनेक परिबलों के कारण परिवार संस्था में परिवर्तन आ रहा है, जो निम्नलिखित है :

(1) परिवार का आकार छोटा होना : अनेक परिबलों के कारण परंपरागत संयुक्त परिवार के स्थान पर छोटे आकार के परिकर प्रभाव में आ रहे हैं।

(2) जिम्मेदारी का क्षेत्र कम होना : वर्तमान पीढ़ी के लिये उनके दूर के रक्त संबंधी कम महत्व वाले होते जा रहे है। संयुक्त परिवार में सदस्यों के प्रति जिम्मेदारी और कर्तव्य का पालन कठिन होता जा रहा है।

(3) पति-पत्नी के बीच संबंध में परिवर्तन : परंपरागत भारतीय परिवार में पति-पत्नी के बीच संबंध सत्ता और ताकत के आधार पर था। पति की आज्ञा का पालन पत्नी के लिए अनिवार्य था। लेकिन वर्तमान समय में इन संबंधों में विशेष बदलाव आया है। पति-पत्नी के बीच समानता का आधार पाया जा रहा है। जिसके फलस्वरूप नये रूप के संबंध का जन्म हो रहा है।

(4) माता-पिता और बच्चों के मध्य संबंध : माता-पिता और बच्चों के बीच संबंध की साधारण डोर सत्ता और ताकत के मूल्यों पर होती है। पिता का निर्णय अंतिम होता था। अब पिता की सत्ता कमजोर होती जा रही है। बच्चे पिता के

निर्णय के सामने अपना अभिप्राय देने लगे हैं। बच्चे पिता के अधीन रहे ऐसी अपेक्षा नहीं रखनी चाहिए। बच्चों के प्रति माता-पिता का नजरिया बदल रहा है।

वैवाहिक संस्था (Marriage Institution)

विद्यार्थी मित्रो, पहले के मुद्दे में परिवार संस्था की चर्चा हुई; लेकिन विवाह संस्था परिवार संस्था के साथ जुड़ी महत्त्वपूर्ण संस्था है। इसलिए हम सभी वैवाहिक संस्था के बारे में चर्चा करेंगे।

विवाह, परिवार संस्था की प्रथम सीढ़ी है। विभिन्न समाजों के सामाजिक आदर्शों और मूल्यों में विभिन्नता होने के कारण विवाह के उद्देश्य और स्वरूप में अंतर दिखाई देता है।

विवाह का अर्थ

विवाह, स्त्री-पुरुष के बीच एक विशेष प्रकार का संबंध होता है जिसमें लैगिक संबंध समाज मान्य और नियमानुसार मान्य होता है। जॉनसन के मतानुसार,''विवाह का आवश्यक तत्त्व यह है कि उसमें स्त्री और पुरुष एक स्थायी संबंध में जुड़ कर स्वयं की सामाजिक स्थिति खोये गैर संतान पैदा करने की सामाजिक आज्ञा प्राप्त करते हैं।'' वेस्टरमार्क के मतानुसार, ''विवाह एक या एक से अधिक पुरुषों का एक या एक से अधिक स्त्रियों के साथ संबंध होते हैं। जो सामाजिक रिवाजों या नियमों द्वारा स्वीकार्य होते हैं। इस प्रकार के संबंध में विवाह करने वाले व्यक्ति और संतानों का पारस्परिक अधिकार और कर्तव्य जुड़ा होता है।'' विवाह के साथ कई कर्तव्य और अधिकार जुड़े होते हैं।

विवाह का उद्देश्य

प्रत्येक धर्म में विवाह का उद्देश्य (धार्मिक कर्तव्यों का पालन) प्रजा (संतान की प्राप्ति) रति (लैंगिक संतोष) तथा घर में निवास करना होता है। समाज की अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति समाज मान्य विधि से और नियमो का पालन किया जाता है।

विवाह के प्रकार

जीवनसाथी की संख्या के आधार पर अर्थात् पति या पत्नी की संख्या के आधार पर विवाह के दो प्रकार हैं। जिसको आकृति में दर्शाया जा सकता है :

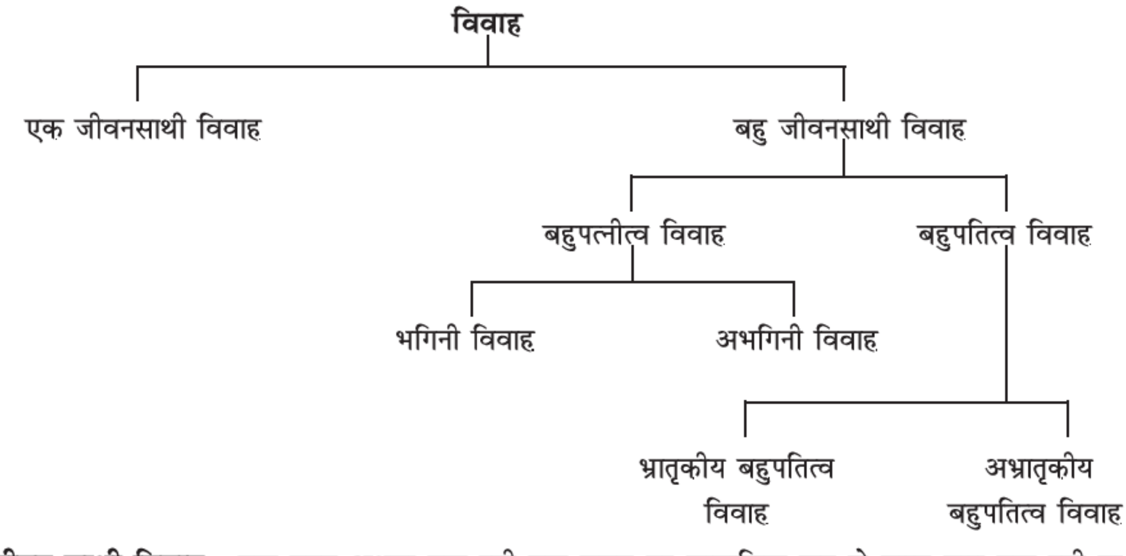

(1) एकजीवन साथी विवाह : एक पुरुष अथवा एक स्त्री एक समय पर सामाजिक रूप से मान्य मात्र एक स्त्री या पुरुष के साथ वैवाहिक संबंध से जुड़ता हो, तब उसे एक जीवन साथी विवाह के रूप में जाना जाता है। इस प्रकार के वैवाहिक संबंध विश्व के अधिक समाजों में सर्वस्वीकृति है।

(2) बहु जीवन साथी विवाह : विवाह संबंध से जोड़नेवाला स्त्री पुरुष का कोई एक पक्ष समाजमान्य स्वरूप में एक संख्या से अधिक हो तब उसे बहु जीवनसाथी विवाह कहते हैं।

(1) बहुपत्नी विवाह : जब कोई एक पुरुष एक से अधिक स्त्रियों के साथ विवाह संबंध से जुड़ता है तो उसे बहुपत्नी विवाह कहते हैं। बहुपत्नी विवाह के दो उप प्रकार होते हैं।

(A) भगिनी बहुपत्नीत्व : जब एक पुरुष के साथ वैवाहिक संबंध से जुड़नेवाली स्त्रियाँ आपस में सगी बहने होती हैं तब उसे भगिनी बहुपत्नीत्व कहा जाता है।

(B) अभगिनी बहुपत्नीत्व : जब एक पुरुष के साथ वैवाहिक संबंध से जुड़नेवाली स्त्रियाँ आपस में सगी बहने नहीं होती हैं तब उस अभगिनी बहुपत्नीत्व के रूप में जाना जाता है।

(2) बहुपतित्व विवाह : बहुपतित्व यह बहुजीवनसाथी विवाह का एक प्रकार है। जिसमें एक स्त्री एक से अधिक पुरुषों के साथ वैवाहिक संबंध रखती हैं। बहुपतित्व के दो उप प्रकार हैं।

(A) भ्रातृकीय बहुपतित्व : जिस वैवाहिक संबंध में स्त्री के साथ जुड़नेवाले पुरुष परस्पर सगे भाई हों तब उसे भातृकीय बहुपतित्व कहा जाता है।

(B) अभ्रातृकीय बहुपतित्व : किसी स्त्री के साथ विवाह करने वाले पुरुष आपस में सगे भाई नही होते हैं, तो उसे अभ्रातृक बहुपतित्व विवाह कहा जाता है।

वैवाहिकसाथी के चयन के क्षेत्र

प्रत्येक समाज में जीवन साथी के चयन के लिए व्यक्ति को मर्यादित स्वतंत्रता होती है। कौन किसके साथ विवाह कर सकता है और कौन किसके साथ विवाह नहीं कर सकता है। इसके बारे में प्रत्येक समाज में अलग-अलग स्तर होता है। उनके द्वारा ही जीवन साथी के चयन का क्षेत्र निर्धारित होता है। रीतिरिवाजों, जाति नियमों और स्तर द्वारा समाज विवाह साथी के चयन क्षेत्र का नियंत्रित करता है। जिसे निम्नानुसार दर्शाया जा सकता है :

(1) अंतर्विवाह : इस समूह में रिवाज के आधार पर व्यक्ति को अपने समूह में से विवाह साथी का चयन करना पड़ता है। जिस समूह में सदस्यों के बीच परस्पर विवाह संबंध हो सकता है। उस समूह को अंतर्विवाह समूह कहा जाता है। जाति अंतर्विवाह समूह है। हिन्दू समाज के परंपरानुसार विवाह साथी का चयन स्वयं की जाति या उपजाति मे से ही हो सकता है। भारत के अन्य धार्मिक समुदायों में भी यह परंपरा विद्यमान है।

(2) बहिर्विवाह : बहिर्विवाह का नियम मूलत: निकटवर्ती सगे संबंधियों के बीच वैवाहिक संबंध को मना करता है। उदाहरण स्वरूप व्यक्ति के निकटवर्ती समूह भाई-बहन और अन्य रक्त संबंध में आने वाले संबंधियों के बीच विवाह नहीं हो सकता है। इस संदर्भ में अलग-अलग नियम होते हैं।

(3) समलोम, अनुलोम और प्रतिलोम विवाह : अपने समकक्ष अथवा अपने समूह के जाति में से जीवनसाथी का चयन करे तो उसे समलोम विवाह कहते हैं। उच्चजाति या वर्ण का पुरुष अपने से निम्न क्रम में मानी जानेवाली वर्ण के पुरुष से विवाह करे तो उसे प्रतिलोम विवाह कहते हैं।

विवाहसाथी के चयन में अग्रतासूचक स्तर

(1) कुलीनशाही : माता-पिता को स्वयं की पुत्री का विवाह उसके कुल से प्रतिष्ठित और उच्च माने जाने वाले कुल के पुरुष के साथ करना चाहिए। ऐसा मूल्य कई समूहों में विद्यमान है इस प्रकार के विवाह को कुलीनशाही विवाह कहा जाता है। कई जातियों में कुलीनशाही विवाह प्रथा आज भी प्रचलित है।

(2) देवर, ज्येष्ठ और साली के साथ विवाह : ज्येष्ठ और साली विवाह की विधि से जीवन साथी प्राप्त किये जाते हैं। स्त्री की पति के मृत्यु के पश्चात पति के छोटे भाई के साथ विवाह करे तो इसे देवर विवाह कहते हैं। और पति के बड़े भाई के साथ विवाह करे तो उसे ज्येष्ठ विवाह कहते हैं। इसी प्रकार से पत्नी के मृत्यु के पश्चात् अपनी पत्नी की छोटी बहन के साथ विवाह कर सकता है। उसे साली विवाह कहते हैं।

(3) पितृवंशीय विवाह : कई समूहों में पितृ पक्ष बुआ की संतानों से और मातृपक्ष मामा या मौसी के संतानों से साथ वैवाहिक संबंध कर सकता है। जिसे पितृवंशीय विवाह के रूप में जाना जाता है।

विवाह संस्था में आये परिवर्तन : औद्योगिकीकरण शहरीकरण कानूनीकरण धर्मनिरपेक्षता व्यक्तिवाद स्वतंत्रता और समानता, स्त्री शिक्षा और स्त्रियों का व्यवसाय में प्रवेश, विज्ञान टेक्नोलॉजी और संचार माध्यमों के विकास के कारण अनेक परिबलों के द्वारा विवाह संस्था में परिवर्तन आया है। जिस निम्नानुसार दर्शाया जा सकता है।

(1) विवाह का धार्मिक पहलू कमजोर पड़ गया है : विवाह में धार्मिकविधि औपचारिक हो गयी है। विवाह एक पवित्र संस्कार और पवित्र बंधन का आदर्श कमजोर हुआ है। कन्यादान विवाह विधि का प्रमुख अंग है, माता-पिता की तरफ से कन्या को चीज वस्तुओं की शौगात दी जाती है। लेकिन उसमे भौतिकता, सामाजिक प्रतिष्ठा, दहेज इत्यादि महत्त्वपूर्ण विषय बनते जा रहे हैं। कन्यादान में जो धार्मिक तत्त्व था उसके स्थान पर सामाजिक-भौतिक तत्व विशेष दिखाई देते हैं।

(2) हिन्दू विवाह में विकसित कानूनी स्वरूप : परंपरागत हिन्दू विवाह को एक संस्कार के रूप में स्वीकार किया जाता है। व्यक्तिवादी रुझान के कारण विवाह के साथ जुड़े हुये परंपरागत मूल्यों में बदलाव आया है। 1954 के स्पेशल मैरिज एक्ट के तहत हुए विवाह में पारस्परिक संमति से तलाक प्राप्त कर सकते हैं। स्त्रीपुरुष दोनों को विवाह विच्छेद का अधिकार मिला हुआ है।

(3) विवाह की उम्र में वृद्धि : कानूनी दृष्टिकोण से लड़कों की उम्र 21 वर्ष और लड़कियों की उम्र 18 वर्ष निश्चित की गयी है। इसके अलावा शिक्षा, विवाह संबंधी बदले विचार, स्त्री शिक्षा में वृद्धि इत्यादि परिबलों के परिणाम स्वरूप विवाह की उम्र बढ़ गयी है। पहले की तुलना में बाल विवाह प्रथा में विशेष कमी आयी है।

(4) वैवाहिक जीवन साथी के चयन में मानदंड में बदलाव : परंपरागत रूप से जीवन साथी का चयन माता पिता या बड़े बुजुर्गों के द्वारा किया जाता है। विवाह में दो परिवारों का मिलना स्वीकारा जाता था। वर्तमान समय में इस बाबत में उल्लेखनीय बदलाव आया है। अब युवक-युवती की इच्छा चयन के लिए महत्त्व दिया जाता है। जीवनसाथी के चयन में व्यक्तिगत योग्यताओं की प्रधानता दी जाती है।

(5) अंतर्जातीय विवाह की मान्यता : कई कानूनी प्रत्यनों और सुधार की प्रवृत्ति के परिणाम स्वरूप अनेक जातियों के बीच वैवाहिक संबंधों की अनुकूलता का वातावरण बना है। 1954 के स्पेशल मैरेज एक्ट से अन्तर्जातीय विवाह को संपूर्ण रूप से समर्थन मिला है।

(6) बहुपति-पत्नी विवाह गैर कानूनी हो गया है : अनेक नियमों के कारण हिन्दुओं में बहुपति उसी प्रकार बहुपत्नी विवाह गैर कानूनी माना जाता है। 1955 के हिन्दू विवाह नियम से हिन्दू समाज में उपर्युक्त प्रथा का कानूनी रूप से अंत कर दिया गया है।

(7) स्वचयनित विवाह की प्रधानता की बढ़ोतरी : विवाहक्षेत्र में संमति के विषय में परिवर्तन आया है। अनेक परिबलों के परिणाम स्वरूप स्वचयनित विवाह होने लगा है। इन विवाहों के प्रति उदारता एवं सहिष्णुता पूर्ण व्यवहार किया जाने लगा है। और इसे स्वीकृति भी मिलती जा रही है।

(8) विवाह विच्छेद की कानूनी मान्यता : कानून द्वारा स्त्री पुरुष को विवाह विच्छेद के लिए समान अधिकार मिला है। दु:खी दाम्पत्य जीवन का निराकरण लाने के लिए अब पति पत्नी विवाह विच्छेद का मार्ग अपनाते हैं। 1955 के हिन्दू विवाह नियम में विवाह विच्छेद का विधान किया गया है।

जाति संस्था (Caste Institution)

जाति संस्था भारतीय समाज की एक विशिष्ट लाक्षणिकता है। आज भी एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक बल के रूप में भारतीय समाज जीवन के रूप में अनेक क्षेत्रों में कम या अधिक प्रमाण में जाति का प्रभाव दिखाई देता है। हिन्दुओं के सामाजिक जीवन में लगभग प्रत्येक क्षेत्र में जाति संस्था का ताना-बाना दिखाई देता है। जिसका विस्तृत असर हिन्दू समाज के भोजन, कपड़े, विवाह, रीति रिवाज पारिवारिक जीवन व्यवसाय इत्यादि क्षेत्रों में दिखाई देता है।

जाति का अर्थ

एम. एन. श्रीनिवास का मानना है कि, ''जाति एक वंश परंपरागत अंतर्विवाह की प्रथा वाला और सामान्य रूप से एक ही जगह पर निवास करने वाला समूह है।'' अलग-अलग जातियों के बीच के संबंधों का नियमन शुद्धि और अशुद्धि के विचारों द्वारा होता है। और प्राय: एक साथ बैठकर भोजन करने का व्यवहार सबसे विशेष जाति के अंदर होता है। धुर्ये के अनुसार हिन्दू समाज ऐसे विभिन्न समूहों में विभाजित हुई हैं। इन समूहों के सामाजिक प्रतिष्ठा के स्तर और पारस्परिक व्यवहारों के क्षेत्र भिन्न-भिन्न है।

जाति के लक्षण

घुर्ये भारत की परंपरागत जाति का स्वरूप समझाने के लिए जाति के मूलभूत लक्षणों को बताया है।

(1) हिन्दू समाज का अलग-अलग खंडों में बँटा होना : अनेक जातियाँ भारत में हिन्दू समाज को अलग अलग भागों में बाँटता है। प्राचीन समय से ही हिन्दू समाज अखण्ड समुदाय नहीं रहा है। हिन्दू समाज की प्रत्येक जाति एक अलग और स्वतंत्र सामाजिक इकाई के रूप में अस्तित्ववाला था। जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को उस जाति के सदस्य पद जन्म से प्राप्त हो जाता है। प्रत्येक जाति की स्वयं की मजबूत और स्वतंत्र जाति पंचायत होती है। प्रत्येक जाति की स्वयं मजबूत संस्कृति होती है। इस बात से स्पष्ट होता है प्रत्येक जाति की एक स्वतंत्र सामाजिक इकाई के रूप में अस्तित्व होता है।

(2) कोटिक्रम : घुर्ये के मतानुसार भारत की सभी जातियों उच्चत्तर एवम् निम्न स्तर की एक निश्चित योजना देखने को मिलती है। कोटिक्रम की व्यवस्था में धार्मिक दृष्टि से ब्राह्मण सबसे उच्च माना जाता है, परंतु अलग अलग जातियों का निश्चित सामाजिक स्थान निश्चित करना मुश्किल होता है। विशेषकर मध्य की जातियों के स्तर की स्पष्टता का अभाव भारतीय जाति व्यवस्था का विशेष लक्षण है।

(3) खानपान और सामाजिक व्यवहार के विषय में प्रतिबंध : खानपान और दूसरे सामाजिक व्यवहार किस जाति के साथ रखें किस जाति के साथ न रखें उसके विषय में कठिनाईयुक्त सामाजिक स्तर प्रत्येक जाति में होता है। खानपान के संबंध और सामाजिक व्यवहारों के विषय में भारत के अलग-अलग प्रदेशों में अलग-अलग जातियों के रिवाज में कई अंतर होते हैं।

(4) विभिन्न जातियों के नागरिक तथा धार्मिक असमर्थता एवम् विशेषाधिकरण : भारत की अनेक जातियों में स्थिति चढ़ते क्रम और उतरते क्रम के विचार से निम्न और उच्च मानी जाने वाली जातियों में नागरिक और धार्मिक अधिकारों के बाबतों में एक असमानता दिखाई देती है। निम्न मानी जानेवाली जातियाँ अनेक अधिकारों जैसे नागरिक और धार्मिक अधिकारों से दूर रखा गया था। जब उच्च मानी जानेवाली जातियाँ कई विशेषाधिकार रखते थे। बस्ती, गाँव के कुएँ का उपयोग, सार्वजनिक रास्ते का प्रयोग, विद्यालय में प्रवेश, मंदिरों में प्रवेश वगैरह कई बातों में असमर्थता और विशेषाधिकार प्रभाव में थे।

(5) व्यवसाय के चयन पर अंकुश : जातियों का व्यवसाय वंश परंपरागत मिलता है। प्रत्येक जाति के निश्चित किए गए व्यवसाय को ही करना उसका कर्तव्य था। पिता का व्यवसाय पुत्र संभाले ऐसी परंपरा थी।

(6) विवाह पर प्रतिबंध : अन्तर्विवाह प्रथा जाति समाज का विशेष पहलू था। प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं की जाति या उपजाति में विवाह करना अनिवार्य था। इस नियम को तोड़नेवाले व्यक्ति को जाति में से निष्काषित करने की सजा मिलती थी।

परंपरागत जाति संस्था में आए परिवर्तन

भारत में जाति प्रथा मध्यकाल के अंत तक जड़ रूप में हो गयी थी। लेकिन भारत में ब्रिटिश शासन शुरू होते ही जाति संस्था में विशेष परिवर्तन आने लगा था। अंग्रेजों ने अंग्रेजी शिक्षा पद्धति सामाजिक कानूनीकरण, औद्योगिकीकरण और शहरीकरण, लोकतांत्रिक और उदारवादी विचारधारा के प्रभाव के कारण जाति संस्था में आधुनिक परिवर्तन की प्रक्रिया प्रारंभ

हो गयी थी। भारत की स्वतंत्रता के पश्चात् जाति परिवर्तन की प्रक्रिया अधिक तेज हुई। स्वतंत्र भारत में जाति संस्था के परंपरागत लक्षणों में निम्नलिखित परिवर्तन आया है:

(1) खंड विभाजन में आया परिवर्तन : परंपरागत व्यवस्था में व्यक्ति जिस जाति में पैदा हो उसे स्वयं उस जाति का दर्जा मिल जाता है। इसमें व्यक्ति के पास कोई विकल्प या चयन नहीं होता आज भी व्यक्ति को जन्म से दर्जा मिलता है। लेकिन जाति द्वारा अर्जित दर्जा के सामने, शिक्षा, नया व्यवसाय और आय जैसे परिबलों से व्यक्ति को प्राप्त दर्जा महत्त्वपूर्ण है। इस जन्मजात दर्जा का महत्त्व है। जो इस लक्षण का परिवर्तन है।

जाति में खण्ड विभाजन के लिए सबसे अधिक प्रभावशाली प्रत्येक जाति की प्रभावशाली संस्कृति थी। प्रत्येक जाति का अलग जीवन था। और उसकी अलग दुनिया हो ऐसा ज्ञात होता है कि प्रत्येक जाति की जीवनशैली, भाषा, पहनावा और व्यवहार जाति के संस्कृति अनुसार था। इसलिए खण्ड विभाजन अधिक हुआ। लेकिन आज शिक्षा, संस्कृतीकरण, पश्चिमीकरण, आधुनिकीकरण, वैश्वीकरण परिबलों के कारण जाति की विशेष संस्कृति लुप्त होने लगी है। सभी का पहनावा भाषा, भोजन, व्यवसाय, समान होने लगे हैं। जिससे जाति का खण्ड विभाजन लुप्त हो जाने से वे आधुनिक जीवन जीने लगे हैं। इसी प्रकार खण्ड विभाजन को प्रभावशाली बनाने में जाति पंचायत महत्त्व की भूमिका निभाई प्रत्येक जाति की विशेष पंचायत थी। जो सदस्यों के व्यवहार पर नियंत्रण रख के जाति के स्वयं के समूह को सुरक्षित रखते थे परंतु अनेक परिबलों और जाति असमर्थता निवारण कानून और दूसरे नियमों के द्वारा जाति पंचायत की सत्ता को समाप्त किया। अथवा कमजोर होने के कारण जाति के सदस्य आधुनिक जीवनशैली जीने लगे। जाति में नियंत्रणों के सामने विरोध करने लगे।

इस तरह जन्मजात वारसागत दरजे के बदले अर्जित दरजे का महत्त्व बढ़ा, जाति संस्कृति का पतन और जाति पंच का कमजोर होने से खण्डों में विभाजन लुप्त होता जा रहा है।

(2) सामाजिक कोटिक्रम में परिवर्तन : जाति के अनेक समूहों का स्थान असमान होने से इसमें सामाजिक असमानता मिलती है। इस असमानता के कारण जाति समूह चढ़ते-उतरते क्रम में व्यवस्थित हैं। जिसे सामाजिक कोटिक्रम कहते हैं। जाति व्यवस्था का खुद का कोटिक्रम है। परंतु संपूर्ण भारत में धार्मिक दृष्टि से कुछ जातियों का दर्जा उच्च था। उसी प्रकार कुछ जातियों का दर्जा निम्न था। बीच की जातियों का दर्जा जमीन का हक, सत्ता और समाज के अनेक मानदण्डों के आधार पर स्थानीय कक्षा पर निर्धारित होता है।

शिक्षा, औद्योगिकीकरण, शहरी आधुनिक मूल्यों, संस्कृतीकरण कानूनीकरण जैसे परिबलों के कारण जाति के इस लक्षणों में बड़ा परिवर्तन आया है। बड़ी संख्या और कौशल-संपत्ति-आयवाले लोगों का कोटिक्रम में स्थान आगे आया है। उदाहरणार्थ ब्राह्मण, बनिया वगैरह जातियों का कोटिक्रम कमजोर हुआ है।

(3) खानपान संपर्क के ऊपर प्रतिबंध में परिवर्तन : किसको क्या खाना, किसके साथ भोजन करना, किसके साथ बैठना, किसके घर का पानी पीना, उसी प्रकार कच्चा भोजन-पक्का भोजन का विचार परंपरागत जाति व्यवस्था में खान-पान पर और संपर्क पर प्रतिबंध अधिक था। परंतु शिक्षा, औद्योगिकीकरण, शहरीकरण, संस्कृतीकरण, आधुनिकीकरण, पश्चिमीकरण, कानूनीकरण, वैश्वीकरण, संचार के साधनों के कारण इस प्रकार का प्रतिबंध लाना पड़ा है। शहर में लुप्त होने लगा है। परंतु गाँवों में थोड़े अंश में मिलता है। आज तो जंकफूड, फास्टफूड के जमाने में ऐसा विचार टिका रहे ऐसा नहीं है।

(4) नागरिक और धार्मिक असमर्थता तथा विशेषाधिकार में परिवर्तन : भारत की अनेक जातियों में कोटिक्रम के कारण निम्न और उच्च जातियों में नागरिक और धार्मिक अधिकारों में असमानता पैदा हुई है। निम्न जातियाँ अनेक प्रकार के नागरिक-धार्मिक अधिकारों से वंचित रही और कुछ उच्च जातियों के पास विशेषाधिकार थे। उच्च जातियाँ सार्वजनिक जीवन में नागरिक और धार्मिक विषयों में अधिकार रखते परंतु शिक्षा, संविधान आधुनिकीकरण, कानूनीकरण जिसमें अस्पृश्यता

निवारण, ऐट्रासिटी एक्ट औद्योगिकीकरण, शहरीकरण के कारण ऐसे विशेषाधिकार खत्म हो रहे है। इस कारण से निम्न जाति की असमर्थता भी समाप्त हुई है। आज ऐसा व्यवहार करने पर दण्ड मिलता है। इसी कारण वैश्विक, लोकतांत्रिक समानता के आधार पर यह असमर्थता समाप्त हो रही है।

(5) व्यवसाय के चयन की बाँधाओं में परिवर्तन : परंपरागत जाति व्यवस्था में वंश परंपरागत व्यवसाय प्रचलित था। उसके अनुसार प्रत्येक जाति के निश्चित व्यापार उस जाति के सदस्य कर सकते थे। दूसरे जाति के सदस्य उसमें प्रवेश नहीं कर सकते थे। उसी प्रकार स्वयं की जाति के सदस्य भी दूसरे व्यवसायों के लिऐ प्रतिबंधित थे। जब कि व्यापार, खेती, खेत मजदूरी और सेना में नौकरी जैसे पेशे कोई भी जाति कर सकती थी। लेकिन औद्योगिकीकरण, शिक्षा, शहरीकरण, यंत्रीकरण, वैज्ञानिक क्रान्ति के कारण नये व्यवसाय उत्पन्न हुए। जिसमें कौशल ज्ञान महत्त्वपूर्ण हुआ। परिणाम स्वरूप परंपरागत-वंशीय व्यवसायों का आकर्षण कम हुआ। इतना ही नहीं परंपरागत वंशीय व्यवसाय पर जीवन निर्वाह कठिन हो गया। व्यवसाय के महाजन-संगठन का नियंत्रण कमजोर हुआ है। इस कारण व्यवसाय चयन में बाधी कम हुई है और आज जाति और व्यवसाय के बीच संबंध कमजोर हुआ है।

(6) विवाह के प्रतिबंध में परिवर्तन : परंपरागत जाति व्यवस्था में एक उपजाति का व्यक्ति दूसरे उपजाति के व्यक्ति के साथ विवाह प्रतिबंधित था। प्रत्येक उपजाति में विवाह संबंध का क्षेत्र स्वयं के समूह में मर्यादित था। अन्तर्विवाह के नियम कड़े थे। जो इस नियम को तोड़े तो उसे जाति से बाहर निकालने की सजा थी। लेकिन 1954 का स्पेशियल मैरिज एक्ट, 1955 हिन्दू मैरेज एक्ट, जाति असमर्थता निवारण नियम तथा शिक्षा, औद्योगिकीकरण, शहरीकरण, और आधुनिक लोकांत्रिक मूल्यों के स्वीकार्य होने के कारण अन्तर्विवाह कमजोर हुआ। अब एक गाँव की गोल वैसे ही उपजातियों में रोक कम हुई है। परंतु स्वयं की जाति में विवाह करने की प्रथा चालू है। इसके बाद भी ऊपर लिखित परिबलों के कारण अन्तरजातीय, अन्तर्धार्मिक विवाह की संख्या बढ़ी है। इस प्रकार विवाह पर प्रतिबंध कमजोर हुआ है।

सामाजिक वर्ग (Social Class)

विद्यार्थी मित्रो, हम अपनी सामान्य बोल-चाल में बालवर्ग, युवावर्ग, स्त्रीवर्ग जैसे शब्दों में 'वर्ग' शब्द का उपयोग करते हैं। समाजशास्त्र की परिभाषा में सभी वर्ग समाज की रचनात्मक इकाई है। संख्यावाली पंक्ति नहीं। वर्ग का संबंध दर्जे के साथ है। समाज के व्यक्तियों द्वारा अलग-अलग प्रवृत्तियाँ और व्यवसाय करने के कारण समाज में अलग दर्जा बनता है। इन अलग-अलग दर्जों का एक दूसरे की तुलना में मूल्यांकन होता रहता है। उसमें वर्ग पैदा होता है।

वर्ग का अर्थ : प्रत्येक सामाजिक वर्ग दर्जो से बना समूह होता है। जो लगभग समान प्रतिष्ठावाला होता है और एक वर्ग दूसरे वर्ग के बारे में उच्च और निम्न माना जाता है। मैकाईवर और पेज के मतानुसार ''सामाजिक वर्ग समाज का एक ऐसा भाग है जो समाज के दूसरे भागों के संदर्भ में अलग होता है।'' सोरोकीन के मतानुसार, ''सामाजिक वर्ग समाज में ऐसा समूह है जिसके सदस्य व्यावसायिक, आर्थिक और राजकीय दर्जे के विषय में समान स्थान बढ़ाते हैं।'' इस कारण से सामाजिक वर्ग को समान सामाजिक दर्जावाला लोगों का समूह कहा जा सकता है। वर्ग का संबंध जीवनशैली से जुड़ा है।

सामाजिक वर्ग के लक्षण

(1) वर्ग जागृति : प्रत्येक वर्ग के सदस्य स्वयं किस वर्ग में आते हैं, उन्हें उसका आभास होता है। और वे वर्ग के महत्त्वपूर्ण आत्मलक्षी लक्षण हैं। इस तरह की वर्ग जागृति विशेष संयोग में प्रकट होती है।

(2) उच्च-निम्न वर्ग की स्वीकृति : सामाजिक वर्ग का महत्त्वपूर्ण लक्षण यह है कि प्रत्येक वर्ग के सदस्य ऐसा स्वीकार करते हैं कि वे खुद उस वर्ग से उच्च है और उस वर्ग से निम्न है।

(3) समान सामाजिक दर्जा : प्रत्येक वर्ग समान दर्जे वाला समूह है। अर्थात् किसी भी एक वर्ग के सभी सदस्य आय, संपत्ति, व्यवसाय, शिक्षा, राजकीय दर्जे से लगभग समान होते हैं। एक ही सामाजिक वर्ग के सदस्य एक दूसरे को सामाजिक रूप से समकक्ष मानते हैं। उनके आपसी व्यवहार और संबंधों की समानता दिखाई देती है।

(4) अन्तर्विवाह : प्रत्येक वर्ग कम या अधिक अंश में अन्तर्विवाह वाला समूह है। प्रत्येक वर्ग के सदस्य प्राय: अपने वर्ग से जीवनसाथी चयन करने की रवैया रखते हैं।

(5) वर्ग की इकाई परिवार : वर्ग परिवार से बना दर्जा है। वर्ग कोटिक्रम के संदर्भ में परिकर इकाई है। परिवार के सभी सदस्य समान वर्ग दर्जेवाले होते हैं। व्यक्ति को जन्म से वर्ग का दर्जा मिलता है।

(6) समान जीवनशैली : प्रत्येक सामाजिक वर्ग की एक जीवनशैली होती है। एक वर्ग की जीवनशैली दूसरे वर्ग से अलग होती है। एक ही वर्ग के सदस्य समान मूल्य, आचरण, और जीवन पद्धति वाले होते हैं। जीवनशैली व्यापक विचार है, जिसमें मकान, व्यवसाय, जीवनचर्या, मनोरंजन के साधन जैसे अनेक विषय समाहित हैं। किसी भी एक वर्ग का सदस्य इन सभी विषयों की समानता वाला होता है।

(7) स्वयंभू : सामाजिक वर्ग स्वयंभू समूह है। सामूहिक जीवन, श्रम-विभाजन के जन्मजात अंतर, सामाजिक वातावरण का अंतर इत्यादि समाज की सामान्य लक्षणों के द्वारा किसी भी रूप में वर्ग स्वयं बन जाता है। इस कारण से वर्गविहीन समाज नहीं हो सकता है।

विद्यार्थी मित्रो, मानव की समाजव्यवस्था शताब्दियों से अस्तित्व में है। उसका सातत्व बनाए रखने में मानव विकसित सामाजिक संस्था की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इस पाठ में आपने विवाह, परिवार, जाति जैसी समाज की मूलभूत सामाजिक संस्थाओं को समझने का प्रयत्न किया है। विवाह, विवाह के प्रकार, उद्देश्य, परिवार का रूप, प्रकार, उसमें आए परिवर्तनों, जाति, जाति के लक्षण, जाति में आए परिवर्तन, वर्ग, वर्ग के लक्षण इत्यादि की चर्चा के आधार पर इस बारे में जानकारी प्राप्त होगी। समाजशास्त्र में अनेक संस्थाओं के अध्ययन के लिए निश्चित प्रकार की पद्धति और प्रयुक्तियों का विकास हुआ है। समाजशास्त्रीय संशोधन पद्धति के विषय में अब आगे के प्रकरण में जानकारी प्राप्त करेंगे।

स्वाध्याय

1. निम्नलिखित प्रश्नों के विस्तृत उत्तर लिखिए :

(1) सामाजिक संस्था का अर्थ देकर तथा सामाजिक संस्था के लक्षण बताइए।

(2) परिवार का अर्थ देकर परिवार के प्रकार लिखिए।

(3) वैवाहिक संस्था अर्थात् क्या? विवाह के उद्देश्य बताइए।

(4) जाति के लक्षणों का वर्णन कीजिए।

2. निम्नलिखित प्रश्नों के मुद्देवार उत्तर लिखिए :

(1) परिवार के लक्षण

(2) वैवाहिक के कार्य

(3) जाति संस्था में परिवर्तन

(4) परिवार संस्था में परिवर्तन

3. निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षेप में उत्तर लिखिए :

(1) जाति की व्याख्या लिखिए।

(2) सामाजिक वर्ग अर्थात् क्या?

(3) भ्रातृकीय विवाह अर्थात् क्या?

4. निम्नलिखित प्रश्नों के एक-एक वाक्य में उत्तर लिखिए :

(1) विभक्त परिवार अर्थात् क्या?

(2) मातृसत्तात्मक परिवार में वंशगणना किसके नाम से होती है?

(3) एक साथी विवाह प्रथा अर्थात् क्या?

(4) समलोम विवाह अर्थात् क्या?

5. दिए गए विकल्पों में से सही विकल्प चुनकर उत्तर लिखिए :

(1) सामाजिक संस्था यह किस प्रकार की कार्य प्रणाली है?

(अ) प्रस्थापित (ब) विस्थापित (क) निश्चित (ड) इनमें से कोई नहीं

(2) मातृसत्तात्मक परिवार में संपत्ति का वारिश कौन होता है?

(अ) पुत्री (ब) पुत्र (क) पुत्र-पुत्री दोनों (ड) कोई भी नहीं

(3) विभक्त परिवार में परिवार का निर्णय कैसे लिया जाता है?

(अ) एकपक्षीय (ब) सर्वसंमति से (क) परिवार के बड़ों द्वारा (ड) माता द्वारा

(4) स्पेशियल मैरेज एक्ट किस वर्ष में बनाया गया था?

(अ) 1954 (ब) 1956 (क) 1958 (ड) 1961

प्रवृत्ति

- अपने परिवार का परिवार वृक्ष बनाइए।
- अलग-अलग धर्मों की विवाह-प्रथा की सूचना इकट्ठा कीजिए।
- अन्तरर्जातीय विवाह स्वीकार्य या अस्वीकार्य? इस पर चर्चा सभा कीजिए।
- भारतीय समाज में जाति प्रथा समाप्त हो रही है? चर्चा कीजिए।
- वर्तमान समय में जाति के लक्षणों में आपकी दृष्टि में कैसा परिवर्तन आया है - उस पर टिप्पणी लिखिए।

●

7 समाजशास्त्रीय संशोधन-पद्धतियाँ

प्रस्तावना

समाजशास्त्र की उत्पत्ति और एक सामाजिक विज्ञान के रूप में विकास तथा अन्य विषयों के साथ उसके संबंध और उसका विस्तृत विषयवस्तु का परिचय आपको पूर्व के इकाई से मिलता है।

हमारे परिवर्तनशील समाज में विज्ञान के विकास के इतिहास को देखें तो पहले केवल तत्त्वज्ञान में मात्र भौतिक और सामाजिक जगत का ज्ञान भरा हुआ था। लेकिन समय की गति के साथ मनुष्य द्वारा विकसित स्वयं की विशिष्ट संस्कृति और नई खोज के परिणाम स्वरूप भौतिक सामाजिक संसार का अध्ययन करते हुए अलग-अलग शाखायें अस्तित्व में आयीं और स्वतंत्र रूप से विकसित हुई। इन शाखाओं में वैज्ञानिक दृष्टिकोण से, अध्ययन से अनेक भौतिक और सामाजिक विज्ञान का विकास हुआ।

एक सामाजिक विज्ञान के रूप में समाजशास्त्र का उद्देश्य समाज में उत्पन्न होती और समाज के साथ जुड़ी घटनाओं को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से जाँच करके उसके बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त करना है जिससे घटनाओं को वैज्ञानिक तरीके से समझा जा सके और उससे संबंधित सिद्धांत स्थापित किया जा सके। समाज की घटनाओं के बारे में गहराईपूर्वक का संशोधन यह समाजशास्त्र का मुख्य विषय है। तब समाजशास्त्र की संशोधन पद्धतियों की सूचना प्राप्त करना अति आवश्यक हो जाता है। इस इकाई में हम संशोधन प्रक्रिया और समाजशास्त्र की संशोधन पद्धतियों के बारे में संक्षिप्त जानकारी प्राप्त करेंगे।

सामाजिक संशोधन की परिभाषा

रेडमन और मोरी के मतानुसार 'नई जानकारी प्राप्त करने का पद्धतिपूर्ण प्रयास अर्थात् संशोधन।'

संक्षेप में सामाजिक संशोधन अर्थात् समाज जीवन की घटनाओं का वैज्ञानिक पद्धति से विश्लेषण करके उस विश्लेषण के आधार पर समाज जीवन को स्पर्श करने वाले सिद्धांतों या नियमों के साथ विचार रख सकते हैं। इसके लिए वैज्ञानिक क्रिया कलाप की प्रक्रिया। एक अर्थ में ज्ञान प्राप्त करने के लिए पद्धतिपूर्ण प्रयास अर्थात् संशोधन।

सामाजिक संशोधन के उद्देश्य

पालीन यंग के मतानुसार, सामाजिक संशोधन में मुख्य तीन उद्देश्य हैं। (1) सत्य की खोज और निरीक्षण करना (2) सत्य के बीच संबंध खोजना (3) वैज्ञानिक सिद्धांत स्थापित करना।

इन तीन उद्देश्यों को हम नीचे दिये गये मुद्दों से समझ सकते हैं :

(1) सत्य की खोज और निरीक्षण करना : सामाजिक संशोधन का मुख्य उद्देश्य नये सामाजिक सत्यों को खोजना और पुराने सत्यों का निरीक्षण और उसका परिक्षण करना है। संशोधन में जब निरीक्षण किया जाता है कि तब यह मानकर निरीक्षण किया जाता है कि कोई भी सत्य एक दूसरे के साथ जुड़ा होता है। ये सत्य एक दूसरे से अलग नही होते हैं। यदि एक सामाजिक सत्य अन्य सामाजिक सत्य के साथ संबंधित होता है तो अर्थपूर्ण बनता है। हम यह कह सकते हैं कि सामाजिक संशोधन में सत्य के पीछे दिया हुआ रहस्य खोजने का प्रयास है।

(2) सत्य के बीच संबंध खोजना : सामाजिक संशोधन का दूसरा महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है सत्य के बीच संबंध को खोजना। सामाजिक संशोधन में एकत्रित सत्य को तार्किक और क्रमबद्ध व्यवस्थापन के साथ उसका पृथक्करण करना, सत्य के बीच संबंध का विश्लेषण करना उस सत्य का गुण अर्थ जानकर, सत्य के बीच संबंध के प्रकार को 'संबंध या कार्यकरण' खोजना होता है।

(3) वैज्ञानिक सिद्धांत स्थापित करना : सामाजिक संशोधन का तीसरा और अंतिम उद्देश्य संशोधन प्रक्रिया के अंत में सामाजिक जीवन से जुड़ी निश्चित सिद्धांत प्रतिस्थापित करना है। इसी के साथ मानव व्यवहार के अध्ययन में सहायक हो सकें। ऐसे वैज्ञानिक सामग्री और विचार का विकास के साथ अन्य सिद्धांतों का विकास कर सके।

सामाजिक संशोधन के मुख्य सोपान

सामाजिक संशोधन यह एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है। इसके मुख्य सोपान निम्नलिखित है।

(1) संशोधन विषय का चयन (2) संशोधन आयोजन (3) उपकल्पना करना (4) सूचना एकत्रीकरण की प्रयुक्ति का चयन (5) सूचना एकत्रीकरण (6) सूचना का वर्गीकरण और पृथक्करण (7) संशोधन का निष्कर्ष और सामान्यीकरण (संशोधन विवरण)

उपरोक्त सोपानों का विस्तृत ज्ञान नीचे बताये अनुसार प्राप्त कर सकते हैं।

(1) विषय का चयन : संशोधनकर्ता अलग-अलग संशोधन करने वाले क्षेत्र का सर्वांगीण दृष्टि से विचार करके एक विषय का सावधानी पूर्वक वैज्ञानिक संशोधन का प्रथम सोपान है। किसी भी संशोधन कार्य को शुरू करने के लिए विषय का चयन अति आवश्यक मुद्दा है। क्योंकि विषय चयन के बिना संशोधन नही किया जा सकता है। उदाहरणतया गुजरात में स्त्री पुरुष के लिंग अनुपात की समस्या।

(2) संशोधन आयोजन : संशोधन कर्ता को वैज्ञानिक पद्धति से संशोधन करना हो तो उसके लिए पहले से आयोजन करना आवश्यक हो जाता है। आयोजन संशोधन कर्ता को संशोधन की दिशा निश्चित करने वाला तार्किक और आयोजित सामग्री है। जब कि सामाजिक घटनाओं की जटिलता के कारण निश्चित और ठोस आयोजन कदाचित सफल होता है। क्योंकि संशोधन कार्य जैसे-जैसे आगे बढ़ता है। वैसे-वैसे निश्चित आयोजन में कई परिवर्तन करने की आवश्यकता भी उत्पन्न होती है। इस प्रकार ऐसा कहा जा सकता है कि संशोधन के पहले उसमें निश्चित आयोजन में कामचलाऊ और संशोधन कर्ता को मात्र दिशा निर्देशन का कार्य करता है। इस तरह संशोधन का आयोजन करते समय संशोधनकर्ता को कई महत्वपूर्ण निर्णय लेने पड़ते हैं। संशोधनकर्ता को कब से संशोधन कार्य करना है, संशोधन क्षेत्र की सीमा निश्चित करना सूचना इकट्ठा करने के लिये क्या पद्धति रखे जैसे विषयों का निर्णय संशोधन आयोजन में महत्त्वपूर्ण भूमिका रखते हैं।

(3) उपकल्पना करना : उपकल्पना करना संशोधन प्रक्रिया का आधारीय महत्त्वपूर्ण विषय है। जब कि सभी विद्ववान उपकल्पना की सोच को संशोधन की स्वतंत्र सोपान नहीं मानते हैं। उपकल्पना वह वास्तविक घटना के तथ्य या सच्चाई के बीच सहसंबंध के बारे में कामचलाऊ माना हुआ विधान जिसका निरीक्षण करना बाकी होता है। उपकल्पना निर्माण हेतु भूतकाल में इस तरह की घटना के साथ जुड़े और कारणभूत माने जानेवाले परिबलों को संशोधनकर्ता अलग सिद्ध करे और उसके मध्य सहसंबंध के लिए प्रश्नवाचक विधान करे। यही प्रश्नवाचक विधान अर्थात् उपकल्पना। इस उपकल्पना को संशोधन के समय निरीक्षण करते हैं।

(4) सूचना एकत्रीकरण की प्रयुक्ति का चयन : संशोधन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सोपान है। इन प्रयुक्तियों द्वारा ही संशोधनकर्ता को खुद के संशोधन प्रश्नों की सूचना एकत्र करना होता है। और एकत्रित सूचना के आधार पर उपकल्पना की जाँच करना पड़ता है। उपकल्पना की जाँच के लिये निश्चित, आधारभूत और विश्वसनीय सूचना मिले यह अति महत्त्वपूर्ण होता है। इसके लिये संशोधनकर्ता स्वयं का अध्ययन क्षेत्र, सूचना के स्रोत, सूचना का स्वरूप, और आकार को ध्यान में रखकर निरीक्षण, साक्षातकार, प्रश्नावली, अनुसूची जैसी सूचना एकत्रीकरण की प्रयुक्ति में से सावधानीपूर्वक आवश्यक प्रयुक्ति का चयन करते हैं। उदाहरण के लिये गुजरात में स्त्रीपुरुष लिंग अनुपात के विषय में संशोधन हेतु सूचना एकत्रीकरण के लिये किस प्रयुक्ति का चयन करे यह निश्चित करना पड़ता है।

(5) सूचना एकत्रीकरण : संशोधनकर्ता द्वारा निर्मित संशोधन की उपकल्पना की जाँच के लिये अध्ययन में घटना के बारे में सूचना एकत्र करना आवश्यक होता है। जब तक उपकल्पना की न कर ली जाये तब तक विज्ञान उसकी यथार्थता को नहीं मानता है। निश्चित सूचना के आधार पर संशोधनकर्ता उपकल्पना की यथार्थता सिद्ध करता है। उसका आधार संशोधनकर्ता द्वारा चयनित सूचना एकत्रीकरण का प्रयोग करके, तटस्थ रहकर सूचना प्राप्त करना होता है। संशोधन कर्ता के लिए पूर्वग्रह हानि पहुँचाता है।

(6) सूचना का वर्गीकरण और पृथक्करण : संशोधनकर्ता वैज्ञानिक प्रयुक्ति से एकत्रित की हुई सूचना अर्थपूर्ण हो तो संशोधनकर्ता द्वारा जो सूचना मिले उसे तार्किक संबंध के आधार पर आपस में जोडते हैं। इसके लिये आवश्यक है, प्राप्त सूचना का वर्गीकरण और पृथक्करण सूचना का वर्गीकरण और पृथक्करण सूचना कें संबंध को बनाये रखने के लिये आवश्यक है। किसी भी अपूर्ण सूचना के आधार पर वैज्ञानिक सिद्धांत या नियम को आधार नहीं दे सकते हैं। इस कारण से संशोधनकर्ता को सूचना में समानता या विभिन्नता के आधार पर वर्गीकृत करना आवश्यक होता है। उदाहरण में उपर्युक्त मुद्दे में लिंग (sex), धर्म, वैवाहिक दर्जा, जाति जैसे मुद्दे का वर्गीकरण कर सकते हैं।

(7) संशोधन के निष्कर्ष और सामान्यीकरण : संशोधन प्रक्रिया का अंतिम सोपान है। संशोधनकर्ता प्राप्त सूचना के वर्गीकरण आधार पर अलग-अलग हकीकत के बीच संबंध को स्पष्ट करता है और उस पर से मिले हकीकतों का सावधानीपूर्वक विधान प्रस्तुत करता है। ऐसे विधान और निष्कर्ष ऐसे निष्कर्षों की जो प्रस्तुति की जाये उसे संशोधन विवरण कहते हैं।

संशोधनकर्ता किसी भी विषय में संशोधन करके निर्णय प्रस्तुत करे तो मात्र एक घटना को लागू हो ऐसा नहीं होता है। इस घटना तथा इसी के समान अन्य सभी घटनाओं पर यह लागू पड़ता है। इस तरह एक घटना का अध्ययन करके प्राप्त निष्कर्ष उस वर्ग के अन्य घटनाओं को समाहित करे तो इस प्रक्रिया को सामान्यीकरण कहते हैं। इन सामान्यीकरण में से सिद्धांत प्रभाव में आते हैं।

समाजशास्त्र की संशोधन पद्धतियाँ

(1) सर्वेक्षण पद्धति : समाजशास्त्र में सूचना एकत्रीकरण की पद्धतिरूप में अधिक प्रचलित और व्यापक उपयोग में आनेवाली पद्धति अर्थात् सर्वेक्षण मात्र सामाजिक संशोधनों में ही नहीं, अपितु सरकारी और गैर सरकारी जैसे अनेक क्षेत्रों में अनेक प्रकार के उद्देश्यों हेतु सर्वेक्षण का उपयोग होता है। आप भी कभी इस तरह के सर्वेक्षण से जुड़े होंगे। सामान्यत: लोगों की रवैया, व्यवहार मान्यताओं अभिप्रायों अपेक्षाओं इत्यादि के अध्ययन में इस पद्धति का उपयोग होता है। संक्षेप में सूचना एकत्रीकरण की लोकप्रिय पद्धति अर्थात् सर्वेक्षण पद्धति। सर्वेक्षण की शुरुआत सैद्धांतिक या व्यावहारिक संशोधन के प्रश्नों से होती है। उसका मापन तथा सूचना विश्लेषण के साथ पूरा होता है।

सर्वेक्षण पद्धति में सूचना एकत्रीकरण करने के लिए दो प्रयुक्ति का उपयोग किया जाता है। (1) साक्षात्कार पद्धति (2) प्रश्नावली पद्धति।

बड़े स्तर पर संशोधन प्रश्नों के लिए समष्टि में से या समष्टि के हिस्से में से प्रश्नावली या साक्षात्कार अनुसूची का उपयोग कर के सूचना एकत्र करने की आवश्यकता होती है। सूचना एकत्र करते समय इन अध्ययनों को सामान्य रूप से सर्वेक्षण कहा जाता है।

संक्षेप में सामाजिक जीवन से जुड़ी सूचना एकत्र करके उसके वर्णन करने की वैज्ञानिक पद्धति अर्थात् सर्वेक्षण

सर्वेक्षण के विभाग

समष्टि सर्वेक्षण (सेन्सस सर्वेक्षण)	निदर्श सर्वेक्षण (सेम्पल सर्वेक्षण)
अध्ययन प्रश्न से जुड़ी सूचना समस्त जनसंख्या या समष्टि में से एकत्र किया गया।	जो अध्ययन जनसंख्या या समष्टि का प्रतिनिधित्व करनेवाला भाग (नमूना) से जुड़ा हो।

सामाजिक सर्वेक्षण के उद्देश्य : (1) वर्णनात्मक उद्देश्य (2) सैद्धांतिक उद्देश्य

(1) वर्णनात्मक उद्देश्य : वर्णनात्मक उद्देश्य से प्राप्त सर्वेक्षण उपयोगिता के आधार पर बने होते हैं। इस तरह के सर्वेक्षण का उद्देश्य सामाजिक जीवन का कोई न कोई आधार से जुड़ी सूचना एकत्र करके उसका वर्णन होता है। इस तरह के सर्वेक्षण को वर्णनात्मक सर्वेक्षण कहते हैं। इस सर्वेक्षण की सूचना का वर्णन करने के पीछे मुख्य उद्देश्य समाज कल्याण के लिए रचनात्मक कार्यक्रम प्रस्तुत करना तथा उसके आधार पर निर्णय लेना होता है।

(2) सैद्धांतिक उद्देश्य : सैद्धांतिक रूप से किये गये सर्वेक्षण का उद्देश्य हकीकतों को समझने और स्पष्टीकरण में होता है। इन सर्वेक्षणों में सामाजिक सिद्धांतों द्वारा सूचित उपकल्पना का निरीक्षण होता है। और घटनाओं के ऊपर अलग-अलग परिबलों का प्रभाव देखा जाता है। इस सर्वेक्षण को विश्लेषणात्मक सर्वेक्षण भी कहा जाता है।

सामाजिक सर्वेक्षण में वैज्ञानिक संशोधन के सोपान अनुसार सामाजिक जीवन से जुड़ी हुई सूचना एकत्र की जाती है।

साक्षात्कार

साक्षात्कार पद्धति

सामाजिक संशोधन में सूचना एकत्र करने का एक तरीका है। साक्षात्कार पद्धति। सामाजिक संशोधन में संशोधन कर्ता संशोधन के उद्देश्यों को ध्यान में रखकर जिसका अध्ययन करना चाहता हो ऐसे व्यक्तियों से प्रत्यक्ष मिल कर, प्रश्न पूछ कर सूचना एकत्र करने का प्रयास करता है। अर्थात् संशोधन कर्ता द्वारा उत्तरदाता से रूबरू मिलना बातचीत करना, प्रश्न पूछना, सूचना एकत्र करने का तरीका अर्थात् साक्षात्कार पद्धति।

साक्षात्कार में दो पक्ष होते हैं। पहला साक्षात्कार लेने वाला (संशोधन कर्ता) और दूसरा साक्षात्कार देने वाला (उत्तरदाता)। साक्षात्कार में संशोधन कर्ता अपने संशोधन प्रश्न के समस्या की संदर्भ में उत्तरदाता से व्यक्तिगत रूप से मिलता है। उससे प्रश्न पूछकर अपने संशोधन के लिए सूचना एकत्रित करता है। इस अर्थ में साक्षात्कार अर्थात् संशोधन कर्ता और उत्तरदाता के बीच आमने सामने शब्दों द्वारा प्रक्रिया होना। इस तरह साक्षात्कार को दो व्यक्ति के बीच अंतर क्रिया भी कहते है।

साक्षात्कार में संशोधन कर्ता दो विधि से उपयोगी सूचना प्राप्त करता है। उसमें एक साक्षात्कार अनुसूची और दूसरी साक्षात्कार मार्गदर्शिका ।

(1) साक्षात्कार अनुसूची : संशोधन प्रश्न के संशोधन में प्रश्नों से बनी हुई क्रमबद्ध सूची अर्थात् साक्षात्कार अनुसूची। साक्षात्कार अनुसूची यह संशोधन समस्या के संदर्भ से पहले की बनी हुई क्रमबद्ध प्रश्नों की सूची होती है।

संशोधनकर्ता उत्तरदाता से मिलता है। तब उत्तरदाता रू-ब-रू क्रमबद्ध प्रश्न पूछता है। और उत्तरदाता जो उत्तर देता है। उसे सूचना सूची में लिखता है।

(2) साक्षात्कार मार्गदर्शिका : डेनिस और स्टीफन के मतानुसार, ''साक्षात्कार मार्गदर्शिका ज्ञात करनेवाली सूचनाओं की रूपरेखावाली मार्गदर्शिका होती है। वह निश्चित प्रश्नों की बनी हुई होती है। किन-किन मुद्दों से जुड़ी जानकारी लेना है। यह मुद्दे बताने वाली सूची होती है। जिस सूची को ध्यान में रखकर साक्षात्कार लेनेवाला सूचना देनेवाले से प्रश्न पूछता है और प्राप्त करनेवाली सूचना को एकत्रित करता है।''

प्रश्नावली पद्धति

सामाजिक संशोधन की सूचना एकत्र करने के लिये दूसरी पद्धति अर्थात् प्रश्नावली पद्धति। संशोधन के प्रश्न के परिप्रेक्ष्य में संशोधनकर्ता द्वारा रचित प्रश्नों की सूची अर्थात् प्रश्नावली। विद्यार्थी जीवन में आप भी विद्यालय के छात्रावास में प्रवेश लेने के लिये प्रवेश पत्र में दिये गये प्रश्नो की सूचना भरी होगी। इस प्रवेश पत्र के विषय में विचार करेंगे तो आप समझ जाएँगे कि प्रश्नावली वास्तव में प्रश्नों की एक सूची या फलक है। जिसका उत्तर उस व्यक्ति को स्वयं पूर्ण करना होता है।

गुड और हट्ट के मतानुसार ''पत्रक के उपयोग के द्वारा प्रश्नों के उत्तर को प्राप्त करने की एक पद्धति अर्थात् प्रश्नावली''

इस पत्रक के प्रश्नों का उत्तर उत्तरदाता स्वयं लिखता है।

संशोधनकर्ता प्रश्नावली का उपयोग दो विधि से करते हैं : (1) सामने हाथो हाथ देना (2) पत्र या ई–मेल द्वारा भेजना

यदि संशोधन से जुड़े उत्तरदाता एक निश्चित जगह पर हों तो संशोधनकर्ता उससे साक्षात मिलकर प्रश्नावली देता है। तत्पश्चात् एक निश्चित स्थल पर एकत्र होकर, प्रश्नावली भरी जाती है। जब उत्तरदाता संशोधनकर्ता से दूरस्थ हों तो तब संशोधनकर्ता पत्र या ई–मेल द्वारा प्रश्नावली भेजते हैं। इस प्रश्नावली पद्धति में कई लाभ और हानि निम्नानुसार होते हैं।

प्रश्नावली के लाभ

(1) अधिक संख्या में आदमियों का विस्तृत क्षेत्र में होने से इस पद्धति का उपयोग करके सूचना प्राप्त किया जाता है।

(2) पत्र या ई–मेल द्वारा भेजी गई प्रश्नावली की सुविधा के कारण संशोधनकर्ता के समय और धन की बचत होती है।

(3) प्रश्नावली में उत्तर देते समय उत्तरदाता के सामने संशोधनकर्ता प्रत्यक्ष उपस्थित नहीं रहता है इस कारण से उत्तर बिना दबाव द्वारा मिलता है।

प्रश्नावली से हानि

(1) प्रश्नावली का उपयोग मात्र शिक्षित वर्ग के उत्तरदाता दे सकते हैं।

(2) पत्र या ई–मेल द्वारा प्रेषित प्रश्नावली कभी–कभी उत्तरदाताओं के पास से वापस नहीं आती या कभी–कभी प्रश्नावली अधूरी और क्षतिग्रस्त होती है।

(3) कई बार उत्तरदाता समय से प्रश्नावली वापस नहीं भेजते हैं।

(4) सभी उत्तरदाता को केन्द्र में रखकर प्रश्नों की रचना करना संशोधन कर्ता के लिए कठिन होता है।

प्रश्नावली के प्रकार

प्रश्नावली के समावेशित प्रश्नों के स्वरूप को ध्यान में रखकर देखें तो प्रश्नावली के प्रकार निम्नलिखित हैं: (1) प्रतिबंधित प्रश्नावली या वैकल्पिक उत्तरवाली प्रश्नावली (2) अप्रतिबंधित प्रश्नावली या स्वतंत्रत उत्तरवाली प्रश्नावली (3) प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष प्रश्नोंवाली प्रश्नावली चित्रात्मक प्रश्नावली

(1) प्रतिबंधित प्रश्नावली या वैकल्पिक उत्तरवाली प्रश्नावली : प्रश्नावली के इस रूप में प्रश्नों के उत्तर निश्चित होते हैं। जो 'हा' या 'ना' अथवा 'ज्ञात नही' या पूछे गये प्रश्न का उत्तर विकल्प के रूप में दिया गया होता है या बाद में प्रश्नावली में प्रदत्त प्रश्नों के साथ उत्तरदाता को सहमति या असहमति देना पड़ता है इस तरह से प्रश्न–प्रश्नावली में रखे जाते हैं। इस प्रश्नावली में पूछे गये प्रश्न प्रतिबंधित प्रश्न और प्रश्नावली को प्रतिबंधित प्रश्नावली कहा जाता है।

(2) अप्रतिबंधित प्रश्नावली या स्वतंत्र उत्तरवाली प्रश्नावली : जिस प्रश्नावली में प्रश्नों के उत्तर, उत्तरदाता स्वयं के शब्दों में बिना प्रतिबंध के स्वतंत्र रूप से दें ऐसी प्रश्नावली को अप्रतिबंधित या स्वतंत्र उत्तरवाली प्रश्नावली कही जाती है। उदाहरण स्वरूप देश के विकास के लिये कैसा काम करें?

(3) प्रत्यक्ष-परोक्ष प्रश्नोंवाली प्रश्नावली : जिस प्रश्नावली में प्रश्न पूछने का आशय संशोधन कर्ता को उत्तरदाता से स्पष्ट मिल जाये ऐसे प्रश्नों को प्रत्यक्ष प्रश्न कहते हैं। दूसरे शब्द में प्रत्यक्ष प्रश्न सीधे रुप में संशोधनकर्ता के उद्देश्य को बताता हो।

प्रत्यक्ष प्रश्न संशोधन के साथ सुसंगत और संशोधन समस्या से जुड़ा है। चाहे, प्रत्यक्ष प्रश्न प्रतिबंधित या अप्रतिबंधित रूप में हो सकते हैं। ऐसे प्रश्न उत्तरदाता के विचार, रवैया, अभिप्राय और मान्यताओं इत्यादि को ज्ञात करने में अति उपयोगी होते हैं।

अप्रत्यक्ष प्रश्नोवाली प्रश्नावली अप्रत्यक्ष प्रश्नों से बनी होती है। इन प्रश्नों के पीछे संशोधनकर्ता क्या जानना चाहता है वह उत्तरदाता समझ न सके ऐसे प्रश्नों को अप्रत्यक्ष प्रश्न कहा जाता है। इस तरह के प्रश्न संशोधन के उद्देश्यों के साथ सीधे संबंधित नहीं होते हैं। लेकिन अवधारणा या सिद्धांत संशोधन के उद्देश्य से जुड़े रहते हैं। जिसमें संदिग्ध चित्रों को दिखाकर उत्तरदाता से पूछते हैं। 'यह चित्र क्या सूचित करता है?' ''यह चित्र किसका है?'' इसी प्रकार से कोई अपूर्ण वाक्य देकर पूर्ण करने के लिए कहा जाता है। इन प्रश्नों को अप्रत्यक्ष प्रश्न कहा जाता है।

संशोधन कार्य में सभी प्रकार के प्रश्न उपयोगी होते हैं। चाहे प्रतिबंधित प्रश्न हो, अप्रतिबंधित प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष किसी रूप में हो सकता है। इस प्रकार कोई भी प्रश्नावली एक दूसरे से कम या अधिक उपरोक्त प्रश्नों का संयोजन होता है। जिसे मिश्र, प्रश्नावली कहा जाता है। जिसका नमूना परिशिष्ट में दिया गया है।

(4) चित्रात्मक प्रश्नावली : निरक्षर उत्तरदाता या बालकों के पास से सूचना एकत्र करने के लिए अनेक चित्रों का उपयोग किया जाता है इस प्रश्नावली को 'चित्रात्मक प्रश्नावली' कहते हैं।

निरीक्षण पद्धति

सूचना एकत्र करने के लिए अनेक पद्धति में एक पद्धति निरीक्षण पद्धति भी है। ज्ञानेन्द्रियों की सहायता से प्रत्यक्ष अनुभव करके सूचना एकत्रित की जाय उसे निरीक्षण कहते हैं। निरीक्षण वैज्ञानिक रूप में तभी बनता है जब निरीक्षण सावधानीपूर्वक, आयोजित और संशोधन के उद्देश्यों को पूर्ण करने में सहायक होता है। इस प्रकार संशोधन के उद्देश्यों को लक्ष्य में रखकर ज्ञानेन्द्रियों की सहायता से सूचना प्राप्त करने की प्रक्रिया अर्थात् निरीक्षण।

पालीन यंग के मतानुसार, 'निरीक्षण वस्तु व्यक्ति के परिस्थिति के बारे में सूचना प्राप्त करने की प्रक्रिया है।'

परिस्थिति या घटना का अध्ययन करना हो तो जब कोई घटना घटती हो उसी समय घटना स्थल पर जाकर ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा उससे जुड़ी सूचना प्राप्त करनी अर्थात् निरीक्षण करना।

निरीक्षण के प्रकार

निरीक्षण मुख्यत: दो प्रकार के होते हैं जिसे निम्नानुसार बताया गया है : (1) सहभागी निरीक्षण (2) असहभागी निरीक्षण

(1) सहभागी निरीक्षण : निरीक्षणकर्ता स्वत्तः अपने अध्ययन हेतु सामूहिक जीवन में मिल जाता है। और निरीक्षण करता है। उसे सहभागी निरीक्षण कहते हैं। सहभागी निरीक्षण शब्द का सबसे पहले लिंड मैन ने 1924 में अपनी पुस्तक 'Social Discovery' में प्रयोग किया था। मानवशास्त्री मेलिनोवोस्की सहभागी निरीक्षण के प्रणेता हैं।

सहभागी निरीक्षण में निरीक्षणकर्ता अपनी पहचान और उद्देश्य को छिपा कर अध्ययन क्षेत्र के समूह में मिलकर सदस्य बनकर उस समूह के अन्य व्यक्तियो के वास्तविक क्रिया कलापो का निरीक्षण करता है।

सहभागी निरीक्षण की सहायता से निरीक्षणकर्ता समूह के सदस्य के रूप में समूह के अन्य सदस्यों के रूप में स्वाभाविक व्यवहार का निरीक्षण करके, उसके बारे में गहराई पूर्वक सूचना प्राप्त करता है। इस प्रयुक्ति की सहायता से विस्तृत सूचना मिलती है और उसकी सत्यता का भी निरीक्षण होता है, जो संशोधन को विश्वसनीय होता है। उदाहरण स्वरुप मेलिनोवोस्की के द्वारा ऑस्ट्रेलिया के ट्रोबीआन्ड टापू के आदिवासियों का अध्ययन किया जाना।

सहभागी निरीक्षण की उपयोगिता होते हुए भी इसकी कई सीमायें भी हैं। निरीक्षण समूह के सदस्यों को निरीक्षणकर्ता के उद्देश्य का ज्ञान हो जाने पर समूह के सदस्यों का व्यवहार कृत्रिम हो जाता है। इस प्रकार एक संशोधनकर्ता के निरीक्षण द्वारा प्राप्त सूचना को अन्य संशोधनकर्ता के निरीक्षण के लिए कठिन हो जाता है। कभी-कभी संशोधन कर्ता को आवश्यक सूचना प्राप्त करने के लिए लम्बे समय तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है, जिससे समय बर्बाद होता है। यदि निरीक्षण कर्ता तटस्थ होकर सूचना इकठ्ठा न किया हो तो आधारभूत सूचनायें प्राप्त नही होती हैं।

(2) असहभागी निरीक्षण : इस संशोधन में अध्ययन हेतु समूह से संशोधनकर्ता स्वयं को दूर रखकर संशोधन प्रश्न हेतु सूचना प्राप्त करने का निरीक्षण करता है इसे असहभागी निरीक्षण भी कहते हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो संशोधन कर्ता अध्ययन हेतु समूह में निष्क्रिय रहकर एक दर्शक की तरह निरीक्षण करता है। तब उसे असहभागी निरीक्षण कहते हैं।

असहभागी निरीक्षण में संशोधनकर्ता एक बाहरी व्यक्ति के रूप में निरीक्षण करता है। कारखाना, हड़ताल धार्मिक त्योहार की विधियाँ, विद्यालय में शिक्षको एवम् विद्यार्थियो के मध्य सम्बन्ध इत्यादि जैसी अनेक परिस्थिति के अध्ययन में असहभागी निरीक्षण का उपयोग किया जा सकता है।

उपरोक्त प्रकार निरीक्षणकर्ता की भूमिका के आधार पर बनता है। संशोधन में संपूर्ण सहभागी कि संपूर्ण असहभागी निरीक्षण करना कठिन है। इस कारण से संशोधन के क्षेत्र में सहभागी और असहभागी के संयोग से अर्धसहभागी निरीक्षण पद्धति विकसित हुई है जो उपरोक्त दोनों निरीक्षणों में रही कमी को दूर करता है।

व्यक्ति-जाँच पद्धति

सामान्यत: गुणात्मक अध्ययनों में विशेष प्रकार के अध्ययनों की आवश्यकता होती है। व्यक्ति जाँच पद्धति एक पद्धति है। जिसके द्वारा किसी व्यक्ति, संस्था या समुदाय का अध्ययन किया जाता है।

समाजशास्त्र में हर्बर्ट स्पेंसर ने सर्वप्रथम व्यक्ति जाँच पद्धति का उपयोग किया था। सामाजिक संशोधन में दो प्रकार से सूचना एकत्रित की जाती है। (1) संख्यात्मक सूचना (2) गुणात्मक सूचना

इनमें से गुणात्मक सूचना एकत्र करने की एक महत्त्व की पद्धति व्यक्ति पूछपरछ की पद्धति है।

विसेन्ज और विसेन्ज के मतानुसार, ''व्यक्ति जाँच पद्धति गुणात्मक विश्लेषण का रूप है, जिसमें व्यक्ति, परिस्थिति या संस्था का ध्यान पूर्वक संपूर्ण निरीक्षण किया जाता है।'' समाजशास्त्र में सामाजिक जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं का गहन अध्ययन करने के लिए व्यक्ति जाँच पद्धति का अधिक मात्रा में उपयोग होता है। संक्षेप में व्यक्ति जाँच पद्धति मात्र केवल किसी एक व्यक्ति का अध्ययन ही नही, परंतु सामाजिक इकाई के रूप में व्यक्ति, संस्था और समुदाय का अध्ययन किया जाता है।

व्यक्ति जाँच की विशेषताएँ

(1) अध्ययन का केन्द्र सामाजिक इकाई है। (व्यक्ति से समूह तक)

(2) सामाजिक इकाई पर प्रभाव डालने वाले परिबलों को खोजा जाता है और सामाजिक इकाई तथा सामाजिक वातावरण के बीच का कार्यकारण संबंध खोजा जाता है।

(3) सामाजिक इकाई में संपूर्ण अध्ययन के लिए आवश्यक ऐसे उद्देश्यों को लक्ष्य में रखकर अध्ययन किया जाता है।

(4) इस पद्धति में किसी भी एक इकाई का गहराई पूर्वक गुण और दोष का अध्ययन करते हैं।

(5) इस पद्धति को गुणात्मक अध्ययन भी कहते हैं।

(6) इस पद्धति में और अधिक पद्धति और प्रयुक्तियाँ जैसे कि – ऐतिहासिक ग्रंथालय, निरीक्षण, साक्षात्कार इत्यादि का सीधे उपयोग किया जाता है।

व्यक्ति पूछ परछ पद्धति का उपयोग दो प्रकार के अध्ययन से कर सकते हैं : (1) व्यक्ति अध्ययन (2) समूह या समुदाय का अध्ययन

इस पद्धति में प्राथमिक सूचना साक्षात्कार अनुसूची और निरीक्षण द्वारा गौण सूचना डायरी, पत्र, जीवन इतिहास या दैनिक नोट के माध्यम से एकत्र किया जाता है।

व्यक्ति जाँच पद्धति की उपयोगिता

(1) सामाजिक इकाइओं का गुण दोष युक्त अध्ययन हो सकता है।

(2) इस पद्धति के उपयोग के द्वारा नई उपकल्पना या सिद्धांत बनाया जा सकता है।

(3) इस पद्धति से प्राप्त सूचना से अन्य प्रकार के संशोधनों को प्रेरणा मिलती है।

(4) संशोधनकर्ता का ज्ञान समृद्धि होता है।

व्यक्ति जाँच की सीमायें

(1) इस पद्धति में अलग–अलग समूहों की तुलना संभव हो सकती है।

(2) प्राय: मर्यादित स्वरूप में संशोधन में उपयोगी होती है।

व्यक्ति जाँच पद्धति की उपरोक्त उपयोगिता और सीमा होने के बावजूद भी कई नये संशोधन के क्षेत्रों में इनका उपयोग किया जाता है। समाज शास्त्र के उपरांत वाणिज्य संचालन, आधुनिक अपराधशास्त्र, इतिहास और मनोविज्ञान जैसे विषयों में भी इस पद्धति का उपयोग होता है।

गुणात्मक संशोधन में और संख्यात्मक प्रकार के संशोधन में समाजशास्त्र के संशोधन की अनेक पद्धतियाँ और प्रयुक्तियों का उपयोग होता है। जिसकी सूचना हमें इस इकाई से मिलती है। संशोधन के विषय बदलने पर प्रयुक्ति भी बदलनी पड़ती है। समाज की घटनाओं का वैज्ञानिक रूप से खोज करने के लिए इन प्रयुक्तियों और पद्धतियों का उपयोग होता है।

स्वाध्याय

1. निम्नलिखित प्रश्नों के विस्तृत उत्तर लिखिए :

(1) सामाजिक संशोधन के सोपानों का वर्णन कीजिए।

(2) सर्वेक्षण पद्धति के बारे में लिखिए।

(3) प्रश्नावली का अर्थ लिखिए और उनके प्रकारों का वर्णन कीजिए?

(4) सहभागी और असहभागी निरीक्षण का वर्णन कीजिए?

(5) व्यक्ति जाँच पद्धति समझाइए।

2. निम्नलिखित प्रश्नों के मुद्देवार उत्तर लिखिए :

(1) संशोधन के उद्देश्य को स्पष्ट कीजिए।

(2) साक्षात्कार पद्धति समझाइए।

(3) प्रश्नावली के लाभ हानि समझाइए।

3. निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षेप में उत्तर लिखिए :

(1) सामाजिक संशोधन की व्याख्या कीजिए।

(2) सेन्सस सर्वेक्षण किसे कहते हैं?

(3) साक्षात्कार मार्गदर्शिका की व्याख्या दीजिए ।

(4) प्रश्नावली की व्याख्या दीजिए।

(5) निरीक्षण अर्थात् क्या?

4. निम्नलिखित प्रश्नों के एक-एक वाक्य में उत्तर दीजिए :

(1) समाजशास्त्र कैसा विज्ञान माना जाता है?

(2) संशोधन के उद्देश्यों को किसने बताया है?

(3) निदर्श (Sample सेम्पल) अर्थात् क्या?

(4) सहभागी निरीक्षण प्रणेता कौन हैं?

5. दिए गए विकल्पों में से सही विकल्प चुनकर उत्तर लिखिए :

(1) सामाजिक संशोधन के उद्देश्य को बताने वाले विद्वान कौन हैं?

(अ) रेडमन और मोरी (ब) हरबर्ट स्पेन्सर (क) पॉलीनयंग (ड) स्टीफन

(2) बालकों और निरक्षर व्यक्ति से सूचना प्राप्त करने के लिए कौन-सी प्रयुक्ति उपयोगी होती है?

(अ) मिश्र प्रश्नावली (ब) चित्रात्मक प्रश्नावली

(क) प्रतिबंधित प्रश्नावली (ड) अप्रतिबंधित प्रश्नावली

(3) सहभागी निरीक्षण शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग किसने किया था?

(अ) मेलिनोवस्की (ब) पॉलिनयंग (क) गुड हट (ड) लिंड मैन

प्रवृत्ति

- अपने क्षेत्र की किसी घटना का सर्वेक्षण कीजिए।
- किसी एक परियोजना का विषय चयन कीजिए, उसके संदर्भ में प्रश्नावली तैयार कीजिए।
- अपने चारों तरफ की समस्याएँ जानकर, साक्षात्कार प्रयुक्ति का उपयोग करके, उस संदर्भ की सूचना एकत्रित कीजिए और उसका विवरण प्रस्तुत कीजिए।

●

8 पर्यावरण और समाज

प्रस्तावना

विद्यार्थी मित्रो, आप सभी ने प्राथमिक और माध्यमिक कक्षाओं में पर्यावरण के बारे में जानकारी प्राप्त कर ली है। यहाँ पर हम पर्यावरण को सामाजिक दृष्टि से भी देखेगें। समाजशास्त्र सामाजिक विज्ञान है। यह समाज के अलग-अलग पहलुओं से जुड़ा है। इस विषय के बारे में पहले की ईकाई में पढ़ा है। मानवसमाज, समुदाय या संस्थाएँ स्वयं की संस्कृति में पर्यावरण को अग्रता देती हैं। जैसे कि, आप बचपन से पढ़ते आये हैं कि, सूरजदादा, चंदामामा, पृथ्वी माता, समुद्र देव इत्यादि।

मनुष्य के सामाजिक जीवन और व्यवस्था में पर्यावरण अभिन्न रूप से जुड़ा है। हमारे व्रत, तप, उपवास, त्योहार, सामाजिक-सांस्कृतिक प्रसंगों में अर्थपूर्ण रूप से पर्यावरण की बातों को उनसे जोड़ते हैं।

सामान्य रूप में मानव के चारों तरफ स्थित भौगोलिक परिस्थिति को पर्यावरण कहा जाता है, जिसमें सजीव और निर्जीव दोनों तत्त्व होते हैं। पर्यावरण और मानव जीवन का शुरुआत से ही आपस में घनिष्ट संबंध था। अपनी शक्ति और विकास, हमारी संस्थाएँ और प्रथाएँ हमारी सामाजिक सांस्कृतिक जीवन इत्यादि संयुक्त रूप से पर्यावरण के साथ संबंधित हैं।

प्रस्तुत इकाई में हम पर्यावरण का अर्थ समझकर पर्यावरण का मानव जीवन पर प्रभाव, मानव जीवन पर पर्यावरण के प्रभाव को मुद्दे देकर अध्ययन करेंगे। पर्यावरण में प्रदूषण और ग्लोबल वार्मिंग की समस्या वर्तमान समय में सामाजिक जीवन को किस तरह प्रभावित कर रही है उसकी सूचना प्राप्त करना आवश्यक है। इस इकाई का उद्देश्य यह है कि हम पर्यावरण को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से समझकर इसका मनुष्य के साथ संबंध समझना। इसलिए इस विषय के लिए हुए आंदोलनों की जानकारी प्राप्त करना भी है।

मानव समाज के लिए प्रवृत्ति-वृक्ष, पर्वत, नदियों का ज्ञान होना आवश्यक है। जिस तरह से प्रकृति मानव समाज की देखभाल करती है उसी तरह मानव समाज को भी इसकी देखभाल करनी चाहिए। पर्यावरण के संबंध में यह मुद्दा महत्त्वपूर्ण है। विद्यार्थी मित्रो, सबसे पहले हम पर्यावरण का अर्थ समझेंगे।

पर्यावरण का अर्थ

पर्यावरण अर्थात् परि + आवरण पर्यावरण इन दो शब्दों से बना है। परि अर्थात् चारों तरफ और आवरण अर्थात् सतह, अर्थात् पृथ्वी के चारों तरफ की सतह, जिसमें हवा, जमीन, जंगल, पहाड़, नदियो, तालाबों, दरिया, वन्य जीव, पशु-पक्षी एवम् मनुष्य को समाहित करते हैं।

पर्यावरण को मुख्यतया दो भागों में बाँट सकते हैं :

पर्यावरण

जैविक (Biotic) | अजैविक (Abiotic)

सजीव तत्त्व

इसमें वनस्पति (वृक्ष), प्राणी (पशु, पक्षी, मानव) तथा फफूंद और जीवाणुओं को समावेश करते हैं। G-Generator- सर्जक : वनस्पति ऑक्सीजन, पत्ते, घास, फल, अनाज पैदा करते हैं, उत्पादन करते हैं इस पर प्राणी निर्भर होते हैं। O-Operator- संचालक : प्राणियों के मल, मूत्र, मरे जीव इत्यादि पर फफूंद निर्भर होते हैं। D-Decomposer-संहारक : फफूंद और जीवाणु जो जमीन को खाद और उर्वरता प्रदान करते हैं उस पर वनस्पति निर्भर रहते हैं। इस प्रकार के आपसी स्वालम्बन से प्रकृति संतुलित रहती है।

निर्जीव तत्त्व

इसमें अग्नि, जल, वायु, जमीन (पृथ्वी) आकाश इन पाँच तत्त्वों का समावेश करते हैं। इन पाँच तत्त्वों की मात्रा (प्रमाणसर) जीव सृष्टि के लिये अनिवार्य होती है।

पर्यावरण के पंचमहाभूत पाँच निर्जीव तत्त्व अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी (जमीन) और आकाश–पर्यावरण के ही सजीव तत्त्व वनस्पति (वृक्ष), प्राणी (पशु, पंछी, मानव) उसी प्रकार फफूँद जीवाणु के साथ परस्पर अवलम्बी है। इन पाँच तत्त्वों में से एक तत्व की अव्यवस्था हो जाने पर जीव–सृष्टि पर असर डालता है। इसलिये समाज में स्थायीपन के लिये पर्यावरण संतुलन महत्त्वपूर्ण है। हिन्दू संस्कृति में मानव शरीर को पंचमहाभूत निर्मित कहते हैं। ऐसा माना जाता है।

उपर्युक्त चर्चा के आधार पर पर्यावरण की व्याख्या करें तो,

सामान्य अर्थ : मानव के चारों तरफ की भौगोलिक स्थिति अर्थात् पर्यावरण।

पर्यावरण सुरक्षा नियमानुसार

इसमें पानी, हवा, जमीन और अन्य जीवित प्राणियों, वनस्पतियों उसी प्रकार अत्यंत सूक्ष्म जीव और संपत्ति के मध्य आंतरिक संबंध को जोड़ें तो इसे पर्यावरण कहेंगे।

पर्यावरणविदों की प्रस्तुति अनुसार कह सकते हैं कि, ''पर्यावरण अर्थात् किसी भी वस्तु के चारों तरफ चेतनातंत्र की परिस्थिति जो एक दूसरे से जुड़ी हो और मानव जीवन को प्रभावित करे।''

इस तरह, पर्यावरण अर्थात् प्राकृतिक परिबलों का आवरण।

पर्यावरण के घटक

पर्यावरण के मुख्य चार घटक हैं। जो आपस में प्रबल रूप से जुड़े हैं। : (1) वातावरण (2) मृदावरण (3) जलावरण (4) जैविक आवरण (जैवीकरण)

(1) वातावरण (Atmosphere) : वातावरण, पृथ्वी की सतह को सुरक्षा कवच प्रदान करती है। इसमें हवा और उसके घटक, सूर्यप्रकाश, तापमान और आद्रता होती है। सूर्य के द्वारा वातावरण एक समान गर्म नहीं होता है, इस कारण से पृथ्वी के अलग–अलग भागो की, जलवायु, उष्णतापमान, वैसी ही वर्षा की मात्रा में परिवर्तन होता है। वातावरण एक जटिल और गतिशील घटकों से निर्मित तंत्र है। यदि इसमें त्रुटि हो तो समग्र जीव सृष्टि पर प्रभाव होता है।

(2) मृदावरण/भूमि आवरण (Lithosphre) : मृदावरण में जमीन की सतह और भूमि के आकार–प्रकार को समावेश करते हैं। पृथ्वी के ऊपर प्राप्त चट्टानों के क्षरण से मृदावरण बनता है। मृदावरण में कार्बनिक और अकार्बनिक दो घटक होते हैं। चट्टाने जब टूटती हैं तो मिट्टी बनती है जिसके ऊपर मनुष्य कृषि करता है। कृषि योग्य मृदावरण (भूमि/मिट्टी) में लगभग 5 % कार्बनिक पदार्थ और 95 % प्रतिशत अकार्बनिक पदार्थ मिले होते है। मिट्टी के खनिज तत्व अनेक उद्योगों के लिये कच्चे माल के रूप में उपयोगी होते हैं। मृदा के कणों का व्यवस्थापन द्वीजमीन के प्रकार को निश्चित करता है। मृदावरण के ऊपरी स्तर को ह्यूमस कहते हैं। भौगोलिक परिस्थिति अनुसार मृदावरण में वायु और जल मिलता है।

(3) जलावरण (Hydrosphere) : जलावरण पृथ्वी के सतह का तीन चौथाई भाग में फैला हुआ है। जलावरण में महासागर, उपसागर, नदी, तालाब, झरना उसी प्रकार भूगर्भ में स्थिति जल समूह को रखते हैं। जलावरण के लगभग 97 % भाग में सागर है, 2 % प्रतिशत भाग बरफ के रूप में है। जो मनुष्य के उपयोग में नही आता है। मात्र 1 प्रतिशत ही भाग नदी, सरोवर और भूगर्भ में स्थित है। जिस पर जीव सृष्टि निर्भर है। इस कारण से समुद्र के जल को शुद्ध करने के लिए अथक प्रयास किया जा रहा है जिससे जीव सृष्टि सुरक्षित रहें।

(4) जैविक आवरण (Biosphere) : जैविक आवरण पृथ्वी के अन्य आवरणों की तुलना में पतला है। जिसमें प्राकृतिक रूप में जीवन संभव है। कारण उसमें हवा, पानी, चट्टान, मिट्टी और सजीव प्राणी है। समुद्र के सबसे नीचे धरातल से वातावरण के सबसे उच्च बिंदु तक 24 कि.मी. का जैविक आवरण है। यह एक गतिशील और बड़ा निवसनतंत्र

(Ecology) जिसमें अनेक छोटे निवसनतंत्र, जैसे देश, राज्य, जिला अथवा कोई एक स्वतंत्र घाटी, पर्वत श्रेणी नदी या सरोवर जो सहजता से देखे और पहचाने जाय इनको समावेश करते हैं। दूसरे रूप में कहे तो, जैविक आवरण किसी भी भूदृश्य या जल दृष्य के स्तर पर प्रमुख लक्षण दिखाई देता है।

उपरोक्त चारों आवरण परिधि रूप में आपस में गहरे संबंध रखते है।

पर्यावरण के प्रकार

विद्यार्थी मित्रो आपने भौगोलिक दृष्टि से पर्यावरण की सूचना प्राप्त किया। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से इसका प्रकार देखें निम्नलिखित हैं।

भौगोलिक पर्यावरण प्रकृति प्रदत्त है, जब कि सामाजिक पर्यावरण मनुष्य द्वारा निर्मित अथवा रचित है।

लैडिस – पर्यावरण के तीन प्रकार बताते हैं।

(1) प्राकृतिक पर्यावरण – इसमें सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, जल, वायु इत्यादि प्राकृतिक वस्तुओं को रखते है। इन पर मानव की शक्ति या बुद्धि का प्रभाव नही पड़ता है।

(2) सामाजिक पर्यावरण – यह व्यक्तियों द्वारा बनता है। व्यक्ति जन्म से मृत्यु तक उसके साथ जुड़ा रहता है।

(3) सांस्कृतिक पर्यावरण – यह रीति रिवाजों, परंपराओं से बनता है। वह सामाजीकरण के समय मनुष्य को व्यवहारिक ज्ञान देता है।

आगर्बन–निमकॉफ पर्यावरण को प्राकृतिक और मानव सर्जित दो भागो में बाँटते हैं।

मेकाईवर नाम समाजशास्त्री ने पर्यावरण को तीन भागो में बाँटा है।

भौतिक पर्यावरण	आर्थिक पर्यावरण	सामाजिक पर्यावरण
(पृथ्वी, सूर्य, चंद्र, समुद्र, इत्यादि)	(मकान, रस्ता, मशीन इत्यादि)	(सामाजिक, रिति रिवाज)

सामाजिक दृष्टिकोण से पर्यावरण का सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्य होता है। और उसकी क्रिया प्रतिक्रिया के साथ जुड़ा होता है। जैसे कि मिट्टी और वर्षा की उपयोगिता जितनी किसान के लिए होती है। उतना उद्योगपति के लिए नही, इसी प्रकार ग्रामीण पर्यावरण और शहरी पर्यावरण का मानव जीवन पर अलग–अलग प्रभाव पड़ता है।

पर्यावरण का मानव जीवन पर प्रभाव

पर्यावरण के अनेक तत्व आपस में जुड़े होने के कारण एक दूसरे पर प्रभाव डालते हैं। ये अलग–अलग या सामूहिक रूप में मानव जीवन पर डालता है। मनुष्य के सामाजिक, आर्थिक उसी तरह सांस्कृतिक जीवन पर पर्यावरण के तत्वों का सामूहिक प्रभाव एवं अंतरक्रिया का परिणाम दिखाई देता है। विद्यार्थी मित्रो यहाँ पर हम मानव जीवन पर पर्यावरण पर असर और पर्यावरण पर मानव जीवन का असर समझेंगे।

सर्वप्रथम मानव जीवन पर पर्यावरण पर प्रभाव देखें।

मानव जीवन पर पर्यावरण का प्रभाव

मानव जीवन और पर्यावरण के तत्वों का एक दूसरे के साथ संबंध है।

(1) स्थानीय संबंध : किसी भी समाज का सामाजिक, आर्थिक, राजकीय तथा सांस्कृतिक विकास में स्थानीय संबंध महत्व के होते हैं मुख्यत: स्थिति (Location of Situation), आकार (Size) और आकृति (Shape) में दिखाई देता है।

वह राष्ट्र, देश या समाज पृथ्वी के किस भाग में है उसके आधार पर उसके विकास में पर्यावरणीय स्थिति सहायक होती है। उदाहरण स्वरूप पृथ्वी पर प्राप्त रेखांश (जिससे समय निश्चित होता है) और अक्षांश (जिससे उस प्रदेश की जलवायु, प्राकृतिक संपत्ति पशु जीवन, मानव जीवन, संस्कृति इत्यादि निर्धारित होती है।)

(2) मिट्टी और मानव जीवन : मनुष्य जिस प्रदेश में रहता है। वहाँ की जमीन का रूप उसके सामाजिक जीवन पर प्रभाव डालता है। ऊँचे पर्वतीय क्षेत्र में रहने वाले मनुष्य के लिए बड़े उद्योग धंधे व शहर उपलब्ध नहीं होते हैं। इस कारण से वह प्रदूषण और घनी बस्ती से दूर रहते हैं। उस प्रदेश का प्राकृतिक वातावरण वहाँ के प्रतिदिन के आहार पर प्रभाव डालता है। जैसे कि भारत में उत्तर और दक्षिण क्षेत्र में लोगों की दिखावट, आहार और जीवन शैली वहाँ की जमीन के साथ संबंध रखता है।

(3) जल और मानव जीवन : जल ही जीवन है। मनुष्य को पीने के लिए शुद्ध पानी की आवश्यकता है। तो दैनिक कार्य, खेती, उद्योग, पशु पालन इत्यादि के लिए भी पानी आवश्यक होता है। जिस प्रदेश में सागर, झरना, नदी, तालाब, कुँआ या सिंचाई की व्यवस्था होती है। वहाँ के विकास के लिए जल महत्त्व का होता है महासागर के आसपास अलग अलग संस्कृतियाँ दिखाई देती है, जल के कारण मछली उद्योग, तथा बंदरगाह और विदेश के साथ व्यापार हो सकता है। इस तरह मानव जीवन के साथ जल अभिन्न रूप से जुड़ा है। वह समाज जीवन और अर्थ व्यवस्था पर प्रभाव डालता है।

(4) मिट्टी, खनिज और मानव जीवन : मानव जीवन और मानव क्रिया पर मिट्टी और खनिज का अधिक असर दिखाई देता है। खेती की अलग-अलग फसलें उस क्षेत्र की मिट्टी पर आधारित हैं। जैसे काली मिट्टी, भूरी मिट्टी के आधार पर फसल उगती है। उपजाऊ जमीन खेती के लिये अधिक उपयोगी होती है। भारत में शन, नारियल, कपास के उद्योग मिट्टी के प्रकार पर निर्भर होती है। मनुष्य खनिज का उपयोग प्रारंभ से ही करते आया है। पाषण काल, ताम्र युग, काँस्य युग, लौह कालीन युग खनिज तत्वों से प्रभावित है। जैसे चूने का पत्थर, बॉक्साइट, मैगेनीज इत्यादि दूसरे तरफ कई अन्य प्रदेश में बहुमूल्य खनिजें भी हैं। जैसे-सोना, चाँदी, हीरा और प्लेटिनम आदि जो प्रदेश के विकास में महत्त्व रखते हैं। इस प्रकार मानव जीवन के साथ मिट्टी और खनिज तत्व जुड़े हैं।

इसके पश्चात् प्राकृतिक रूप से उगे वृक्ष और पौधे मानव की श्वसन क्रिया पर प्रभाव डालते हैं। भौगोलिक दृष्टि से ठंडे प्रदेश, उष्ण प्रदेश, समशीतोष्ण प्रदेश, प्राकृतिक संपत्ति पर असर डालते हैं। इसी प्रकार मानव जीवन उपयोगी पशुओं का प्रभाव भी दिखाई देता है। पशुओं का उपयोग कई तरह से होता है जैसे मालवाहन में, यात्रा में, चर्म उद्योग में, भोजन में, डेयरी उद्योग में, रक्षा हेतु किया जाता है।

पर्यावरण पर मानव जीवन का प्रभाव

मानव संस्कृति के विकास में प्राकृतिक तत्वों का विशेष योगदान है, उसी प्रकार पर्यावरण के जैव विविधता में मानव का महत्वपूर्ण स्थान है। मानव के जन्म, स्वास्थ्य, मृत्यु में पर्यावरण अधिक निर्णायक होता है। मानव अपनी बुद्धि और टेक्नोलॉजी से पर्यावरण पर अधिक प्रभाव डाला है। उसी तरह विश्व स्तर पर पर्यावरण में अधिक परिवर्तन आया है और उसका सामाजिक प्रभाव भी है।

पर्यावरणीय परिवर्तन हेतु प्रकृति और मानव प्रेरित क्रियायें जिम्मेदार हैं। जैसे कि भूकंप, ज्वालामुखी, जमीन का खिसकना जैसी क्रियाएँ प्रकृति अधीन है लेकिन वर्तमान समय में प्रकृति में आया परिवर्तन मानव प्रेरित क्रियाओं से अधिक जुड़ा है। जैसे कि तीव्रता से टेक्नोलॉजी का विकास, उद्योग परिवहन, निर्माण कार्य, जनसंख्या वृद्धि, शहरीकरण, मनोरंजन के कारण दूरगामी प्रभाव पड़ा है। इस बारे में पर्यावरणविद काफी चर्चा-विचारणा करते हैं। मानव के इन्हीं क्रियाओं के कारण प्राकृतिक संसाधनों में कमी आयी है। जैसे-प्रदूषण, ओजोन की सतह में छेद के कारण वर्तमान और लम्बे समय तक प्रभाव पड़ रहा है।

पर्यावरण के तत्त्वों के आधार से साधन-संपन्न होकर मानव खुद का सामाजिक स्तर बढ़ाने में सफल रहा है। पंखा, टी.वी. वॉशिंग मशीन, ए.सी. इत्यादि द्वारा प्रकृति पर नियंत्रण पाया लेकिन दूसरी तरफ उससे सर्जित कई समस्याएँ भी आयी हैं निम्नलिखित मुद्दों के आधार पर इन विषयों को समझने का प्रयास करेंगे :

(1) जमीन पर प्रभाव : मानवीय क्रियाकलाप के कारण जमीन पर दबाव बढ़ रहा है। जनसंख्या वृद्धि के कारण मनुष्य ने पर्वतों को तोड़कर रास्ते बनाये हैं। प्राकृतिक तत्वों को नष्ट करके अपनी आवश्यकतानुसार घर बनाये हैं। परिणामत: जमीन पर दबाव बढ़ा है। जमीन की गुणवत्ता कम हुई है।

(2) निवसनतंत्र पर प्रभाव : जिस प्रकार से मनुष्य जैवमंडल के जैविक संशाधनों को नष्ट करता है। वैसे ही उसकी जगह पर दूसरा और संशोधन का स्थानांतरण सरलता से नहीं होता है। आधुनिक जीवनशैली के कारण नदियों में प्रेषित

कचरा, प्रदूषित जल, सबमरीन और समुद्र में चलने वाले साधनों के कारण सूक्ष्म जीव नष्ट होते हैं और उनकी वृद्धि रुक जाती है।

(3) ऋतु चक्र पर प्रभाव : औद्योगिक क्रान्ति के कारण तीव्र हुई औद्योगीकीकरण और शहरीकरण के कारण पृथ्वी का वायुमंडल प्रभावित हुआ है। आर्थिक क्रिया के विविधता के कारण प्रदूषण की समस्या पैदा हुई है। हवा में बढ़ते कार्बन डाई आक्साइड, कार्बन मोनो आक्साइड इत्यादि गैसों के कारण फल-फूल और वनस्पति पर प्रभाव पड़ा है। प्रकृति के नियमों में बदलाव हुआ है। ऋतु चक्र बदलाव के कारण गर्मी में वर्षा या ठंडक में गरमी का अनुभव होता है।

(4) वायुमंडल पर प्रभाव : मानवीय क्रिया कलापों के कारण वायुमंडल के ऊपर कई प्रकार से असर हुआ है। जिसमें वायु प्रदूषण, ओजोन सतह में छेद, ग्रीन हाउस इफेक्ट दिखाई देता है। विश्व स्तर पर हिम नदी पिघलने लगी है, असंख्य द्वीप जल समाधि को प्राप्त हो रहे हैं। औद्योगिक क्षेत्र में काला बादल प्राणघातक होता है। कई बार एसिड वर्षा भी होती है जो मानव के जीवन पर विपरीत प्रभाव डालती है।

(5) जलाशयों पर प्रभाव : आधुनिक मनुष्य ने जलाशयों को अलग-अलग विधि से उपयोग करके उसके प्राकृतिक धारा को बदला है। स्वयं की आवश्यताकताओं के लिये कृत्रिम जलाशयों का निर्माण किया है। जलाशयों की प्राकृतिक धारा के बदलाव उसके कटाव और क्षारण से वलसाड़ के तीथल जैसे अनेक समुद्री तटों के गाँव पानी में डूबे हैं। इन गाँवों की अर्थव्यवस्था और पुन:स्थापन का प्रश्न विकट बना है। समय के साथ बेरोजगारी और गरीबी बढ़ी है। आर्थिक असमानता कई अपराधों को आमंत्रित करती है। इस कारण से विस्थापित होना पड़ता है।

(6) स्वास्थ्य पर प्रभाव : स्वास्थ्य का ध्यान मुख्यत: या जैविक और शारीरिक विषय से जुड़ी है। पर्यावरण की दृष्टिकोण से स्वास्थ्य को विशेष रूप से जाना जाता है। एक तरफ मनुष्य वैज्ञानिक अनुसंधान द्वारा चिकित्सा के क्षेत्र में सिद्धियाँ प्राप्त की हैं। तो दूसरी तरफ मनुष्य पर्यावरण को क्षति पहुँचाकर स्वयं के स्वास्थ्य को हानि पहुँचा रहा है। श्वसनतंत्र, चर्म रोग एवं अन्य रोगो का भोगी बन रहा है। शहरी लोग पर्यावरण और प्रदूषण की असंतुलन अवस्था के कारण शारीरिक और मानसिक रोग के शिकार हो रहे हैं, जिसके कारण से मनुष्य की कार्य क्षमता और एकाग्रता कमजोर हुई है।

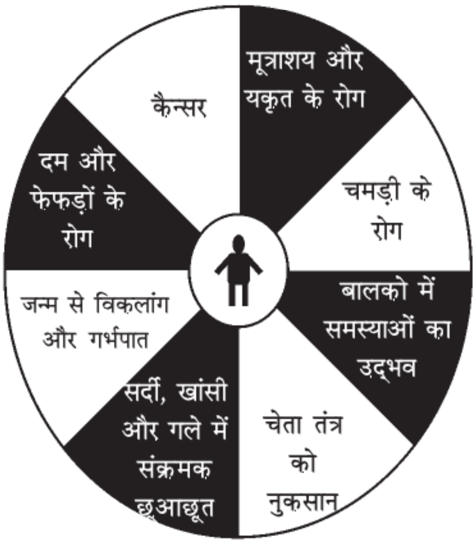

स्वास्थ्य पर प्रभाव

(7) सामाजिक संबंधों पर प्रभाव : पर्यावरणीय परिवर्तन के कारण प्राकृतिक आपत्तियाँ आती है। जैसे कि सुनामी, चक्रवात, आँधी, बाढ़, सूखा, भूकंप इत्यादि, इन प्राकृतिक आपत्तियो में मानव हानि के पश्चात मानव जीवन के अन्य पासो पर दूरगामी प्रभाव पड़ता है।

(8) वनस्पति पर प्रभाव : मनुष्य अपनी आवश्यकतानुसार वनस्पतियों का विनाश करने लगा है। फल-फूल वनस्पति पर आधारित पशु-पक्षी पर विपरीत प्रभाव पड़ा है। जनसंख्या वृद्धि, औद्योगिकीकरण, शहरीकरण इत्यादि के कारण जमीन के वृक्ष काटने से पर्यावरण संबंधी समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं।

(9) पशुजीवन पर प्रभाव : मनुष्य और पशु के संबंध प्राचीनकाल से जुड़े हुए हैं। पशु के उपयोग को हम पहले ही पहचान चुके हैं। वर्तमान मनुष्य पर्यावरण को हानि पहुचाने से कई पशु-पक्षी लुप्त होते जा रहे हैं।

तद्पुरांत पर्यावरण असंतुलन के कारण कई आकस्मिक परिणाम भी मिले हैं जो गुणात्मक एवम् संख्यात्मक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। जैसे कि, 2001 को भूकंप के बाद गुजरात को कच्छ का नया, आधुनिक रूप मिला। कंडला में आये चक्रवात के कारण देश-विदेश से संपर्क बढ़ा, आकस्मिक प्राकृतिक दुर्घटनाओं से बचने के लिये मनुष्य ने अनुसंधान किया, प्रिन्ट और इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों से जागृति बढ़ाई, इस तरह मानव जीवन और पर्यावरण एक सिक्के के दो पहलू के समान हैं ऐसा कहा जा सकता है।

समाज विज्ञान में 1972 से पहले पर्यावरण का समाजशास्त्र नहीं था। 1972 में बेल्जियम में पहली 'पृथ्वी परिषद' की सभा हुई? इस सभा के बाद एक कमिशन (आयोग) का गठन हुआ। इस कमिशन के गठन के पीछे प्रकृति के साथ मनुष्य जीवन के बारे में नही समझना था। इसका विवरण 1988 में बताया गया। जिसका नाम था अवर कॉमन फ्यूचर (Our Comman future) था। इसके बाद 1992 में ब्राजील देश के रिया डी. जेनेरो में दूसरी 'पृथ्वी परिषद' का आयोजन हुआ जिसका नाम 'पर्यावरण और विकास परिषद' रखा गया था। पर्यावरण संतुलन और मानव कल्याण पर जोर दिया गया समाज में इसके बारे में धीरे-धीरे जागृति बढ़ी, पर्यावरण को बचाने के लिये अनेक आंदोलन हुए जिसे हम पर्यावरणीय आंदोलन कहते हैं।

भारत में हुए पर्यावरणीय आंदोलन

(1) चिपको आंदोलन : भारत के उत्तर-पूर्व पहाड़ी क्षेत्र में यह आंदोलन हुआ था। चिपको एक पहाड़ी शब्द है। जिसका अर्थ चिपकना होता है। यह आंदोलन एक आदिवासी क्षेत्र में सरकारीनीति के कारण भविष्य में हानि हो इसके विरोध में स्त्रियों द्वारा इकठ्ठा होकर किया गया विरोध, आंदोलन है। सरकार इस क्षेत्र में स्थानीय लोगों को स्वयं की रोजी-रोटी के लिये जंगल में बनउपज के लिये भी वृक्षों को काटने नहीं देती थी। और अचानक एक कंपनी को वृक्ष काटने का ठेका दे दिया गया। इस घटना से स्वयंभु लोकभावना और सहकार से स्थानीय एवम् नेताओं की सूझ और नेतृत्व से यह आंदोलन प्रारंभ हुआ। स्थानीय लोग इकठ्ठे होकर कंपनी को वृक्ष नही काटने का निर्णय दिया। सभी एक-एक वृक्ष का आलिंगन करके चिपक गये यदि ये वृक्ष काटना है तो हमें भी काटो ऐसे दृढ़ निश्चय से सत्याग्रह किये थे। इस स्थानीय कार्यक्रम में अन्य लोग जुडे और स्वागत किये। इसके लिये महिलाये भी एक हुईं जो सर्वोदय वादियों के सहयोग से ग्राम स्वराज की रचना की, सहकारी मंडलियाँ बनाई और सभी लोग निर्णय लिये कि बनउपज का प्रबंध हम ही करेंगे। इस प्रकार वन संपत्ति का विनाश रुका और ग्राम स्वराजय के कार्यक्रमों के सहयोग से शुरु हुआ। उस चिपको आंदोलन में महिलाओं की अगुवाई बढ़ने लगी। बन अधिकारियों और ठेकेदारों के विरोध में कटिबद्ध हुए। जिसमें गौरी देवी नाम की महिला का नेतृत्व प्रभावशाली रहा। सभी एकजुट होकर कार्यक्षमता दिखाये, सरकार ने ऐसा निर्णय लिया कि 1050 वर्ग कि.मी. क्षेत्र में दस वर्ष तक एक भी वृक्ष नहीं काटे जायेंगे।

चिपको आंदोलन

(2) नर्मदा बचाओ आंदोलन : नर्मदा डैम के विरोध में आंदोलन प्रारंभ हुआ। जो 'नर्मदा बचाओ आंदोलन' के नाम से जाना जाता है।

प्रकृति की आवाज (Sound of Nature)

मोरारजी देसाई जब प्रधानमंत्री थे तब केरल सरकार और पर्यावरणविदों ने 1978 में वहाँ की हाइडो-इलेक्ट्रिकल प्रोजेक्ट के लिये The Silent Valley movement का आंदोलन किया था।

इसके अलावा राजस्थान में विश्नोई आंदोलन, कन्नड का अपीका आंदोलन, तदुपरांत गुजरात में सिमेन्ट उद्योग के संदर्भ में महुआ के किसानों का आंदोलन प्रसिद्ध है।

प्रदूषण का अर्थ और उसका सामाजिक प्रभाव

प्रदूषण का अर्थ : शुद्धता को नष्ट करे वह प्रदूषण। वर्तमान समय में पर्यावरण प्रदूषण एक विकट समस्या है। मनुष्य के साथ प्रकृति भी थोड़ी मात्रा में प्रदूषण फैलाती है। उदाहरणार्थ ज्वालामुखी, दवानल, बाढ़, सूखा, आद्रतायुक्त हवा, पारा (मरक्यूरी) जैसे भारी तत्व प्रदूषण फैलाता है। दूसरी तरफ मानवीय क्रियाकलाप और औद्योगिक विकास का भी प्रदूषण फैलाने में महत्वपूर्ण भूमिका है। सजीव सृष्टि के अस्तित्व के लिये और संचार के लिये जब पर्यावरण अनुचित हो जाता है तो प्रदूषण का विषय चिंताजनक हो जाता है।

बड़े शहर, कारखाना, विनाशकशस्त्र उसी प्रकार अन्य ग्रहों की खोज जैसी मानवीय क्रिया के कारण हवा, पानी, जमीन जैसे पर्यावरणीय घटक असंतुलित हो जाते हैं। इस प्रकार से सजीवों का अस्तित्व खतरे में आ जाता है।

प्रकृति द्वारा या मनुष्य के पर्यावरण विरोधी क्रियाओं के कारण सजीवों के जीवन के लिये आवश्यक तत्व के दूषित होने की क्रिया को प्रदूषण कहते हैं।

दूसरे रूप में कहे तो, प्राकृतिक अथवा मानवीकृत पर्यावरण में अनिच्छनीय पदार्थ का प्रवेश, अथवा विकृतिकारक प्रभाव हो उसे प्रदूषण कहते हैं। पर्यावरण के प्रदूषण में अनेक कारण को मुख्यतया दो भागों में बाँटा जाता है: (1) प्राकृतिक कारण (2) मानवसर्जित कारण

प्रदूषण का सामाजिक प्रभाव

प्रदूषण का समाज पर असर पड़ता है। हवा, जल, जमीन, आवाज का प्रदूषण का सामाजिक प्रभाव देखे।

(1) हवा-प्रदूषण (Air Pollution) : सामाजिक जीवन को सुरक्षित रखने के लिये हवा में स्थित तत्वों का संतुलन बना रहे वह आवश्यक है। वृक्षों के काटने के कारण कार्बन डाईआक्साइड की मात्रा बढ़ने से पृथ्वी का तापमान बढ़ जाता है।

हवा प्रदूषण

असहनीय गर्मी मनुष्य एवं सजीव सृष्टि को हानि करता है। सभी मौत के मुख में धकेल देता है। वाहन, उद्योग, विमान आदि द्वारा निकलते धुएँ, जहरीले पदार्थ हवा में मिलकर श्वसन क्रिया में रुकावट पैदा करके स्वास्थ्य को हानि पहुँचाते हैं।

अधिक समय से धूम्रपान की आदत तथा वायु प्रदूषकों के साथे दीर्घकालीन संपर्क प्राकृतिक प्रतिरोध क्षमता पर असर करता है। बच्चे, गर्भवती औरतें, वृद्ध श्वसन तंत्र ही नहीं दमा, ह्रदयरोग के शिकार हो रहे हैं। धुम्रपान की आदत तथा उनसे प्रभावित व्यक्तियों के रक्त में हीमोग्लोबिन के साथ कार्बन मोनोआक्साइड की मात्रा बढ़ जाने से आक्सीजन का प्रवाह कम हो जाता है। जिसके कारण श्वसनतंत्र के भयानक रोग के अलावा अन्य बिमारियाँ होती हैं। जिसका प्रभाव व्यक्तिगत और पारिवारिक जीवन पर होता है।

वायु प्रदूषण से समाज में ऐतिहासिक इमारतें-स्मारकों एवम् प्राकृतिक सौन्दर्य की मौलिकता पर प्रभाव होता है।

पृथ्वी के ओजोन सतह के हानि स्वरूप त्वचा का जलना, मोतिया बिन्द का होना, त्वचा का कैन्सर जैसी समस्याएँ पैदा होती है। रोग प्रतिकारक क्षमता कमजोर होते ही शरीर में अनेक रोग प्रवेश करते हैं। हवा में उड़ते धूल के कण, सल्फर डाई आक्साइड, कार्बन मोनो आक्साइड और नाइट्रोजन आक्साइड जैसे प्रदूषकों की मात्रा बढ़ने से, वर्षा के जल में एसिड की मात्रा बढ़ती है। यह अम्लीय वर्षा (एसिडरेन) समस्त जीवसृष्टि के लिये घातक है।

(2) जल प्रदूषण (Water Pollution) : पानी जीव सृष्टि की जीवन रेखा है। शुद्ध पानी जीव सृष्टि के लिये आवश्यक है। जहरीले रसायन युक्त प्रदूषित पानी जब नदियों, तालाबों, कुओं, में छोड़े जाते हैं तब शुद्ध पानी दूषित हो जाता है। जो प्रतिदिन के उपयोग में उपयोगी नही होता तो शुद्ध पीनेवाले पानी की बात ही क्या? बल्कि वह जल सृष्टि का भी नाश करता है। दूषित पानी से पैदा हुई साग-सब्जी और अन्न बीमारी को निमंत्रण देते हैं। इसके बाद जहाजों, स्टीमरों, पुलों और बाँधो द्वारा पानी में स्थित जीवसृष्टि को हानि पहुँचाते है।

(3) जमीन प्रदूषण (Soil Pollution) (मृदा प्रदूषण) : जमीन की सतह वाली रचना में जहाँ पर मृदा से प्राप्त पोषक तत्वों में होने वाले परिवर्तन को जमीन (मृदा) प्रदूषण कहते हैं।

मृदा प्रदूषण के लिये बाढ़, सूखा, भूकंप जैसी प्राकृतिक घटनाएँ जिम्मेदार हैं। इस तरह की घटना संपूर्ण जीवसृष्टि के जमीनी जीवन के लिये विनाशकारी होती है। जमीन का क्षरण उसके उर्वरता को कम करता है। कृषि जमीन या गौचर भूमि की कमी से आहार की समस्या उत्पन्न होती है। इस तरह जमीन आधारित अर्थोपार्जन न होने कारण मनुष्य का जीवन तनावग्रस्त बनता है और इतना ही नही स्वास्थ्य भी बिगड़ता है।

पेड़ों के काटने के कारण वृक्षों की जड़ से बंधी जमीन की उर्वरता नष्ट होती है। उद्योगों के द्वारा पैदा जहरीली रसायनो के डालने से या प्रदूषित पानी से उर्वर जमीन कम होती जाती है। अनावश्यक रासायनिक उर्वरकों तथा जन्तुनाशक दवाओं का उपयोग बंजर जमीन की वृद्धि करके, समाज की विकास यात्रा को रोक रहा है।

(4) ध्वनि प्रदूषण-आवाज, शोरगुल प्रदूषण (Noise Pollution) : आवाज नापने की इकाई को डेसीबल कहा जाता है। पर्यावरण अनुसंधान के अनुसार आवाज का स्वीकृत स्तर 125 डेसीबल है। सभी आवाज शोरगुल नहीं होते हैं। शोरगुल अर्थात् अनिच्छनीय आवाज। शोरगुल पर्यावरण का पदार्थ नहीं फिर भी प्रदूषण की समस्या है। जो जीवसृष्टि के स्वास्थ्य को हानि करता है। कारखानों की मशीनें, वाहनों की अनावश्यक ध्वनियाँ, पर्व एवं त्यौहारों पर बजाये जानेवाले लाउड स्पीकर, तेज आवाज की रेडियो, टी.वी. जैसे इलेक्ट्रॉनिक साधनों से ध्वनि प्रदूषण होता है। उससे श्रवण शक्ति कम होती है। कान के पर्दे को क्षति होती है। बहरापन हो सकता है। उसी प्रकार असहनीय आवाज रक्त दबाव बढ़ा कर नाड़ी की गति बदलकर रक्त परिभ्रमण को रोकती है, जिससे स्वास्थ्य खराब होता है, जिससे जनसंख्या का गुणात्मक पहलू कम होता है।

(5) किरणोत्सर्गी प्रदूषण (Radioactive Pollution) : आधुनिक समय में परमाणु शक्ति के अनेक उपयोग से मानवसर्जित किरणोत्सर्गी विकिरण की मात्रा पर्यावरण में बढ़ने से, सामाजिक जीवन पर उसकी विपरीत प्रभाव दिखायी देता है।

पर्यावरण के घटक तत्व आकाश में ओजोन नामक वायु की सतह है। जो सूर्य के तीव्र किरणों को रोककर आवश्यकतानुसार पृथ्वी पर आने देता है जिससे जीवसृष्टि स्थिर रहती है। मानवीय क्रियाओं से इस सतह को हानि पहुँचाने के कारण पृथ्वी पर प्रतिदिन तापमान बढ़ता है। जिससे सजीवों का जीवन कठिन हुआ है। अधिक मात्रा में किरणोत्सर्जन सजीव सृष्टि को हानि पहुँचती है। मनुष्य के चेतनातंत्र को हानि पहुँचती है। कंपन पैदा होता है, आधे घंटे में मानव बेहोश हो जाता है, श्वसन और चेतनातंत्र की हानि से मानव मृत्यु को प्राप्त होता है अधिक मात्रा में किरणोत्सर्ग व्यक्तिगत स्वास्थ्य को खतरे में डालने के साथ गुणसूत्रों में परिवर्तन होने कारण पीढ़ी दर पीढ़ी इसका दूरगामी प्रभाव दिखाई देता है। जो गुणवत्तायुक्त समाज की स्थिरता को प्रभावित करता है।

इस प्रकार हवा, जल, जमीन, शोरगुल वैसे ही किरणोत्सर्ग न प्रदूषण से पैदा होने वाली अस्वस्थकारक स्थिति बीमारी या रोग जैसा प्रभाव सजीव सृष्टि पर विनाशक प्रभाव करता है। मनुष्य की काम करने की शक्ति कम हो जाती है। उसकी उत्पादकता नीचे आने लगती है। परिणाम स्वरूप समाज के महत्वपूर्ण कार्य नहीं हो सकता है। समाज में व्यक्ति वैसे सार्वजनिक स्वास्थ्य का स्तर नीचे हो रहा है। जिससे व्यक्ति, परिवार और राष्ट्र के विकास में रुकावट पैदा होती है। इस कारण से प्रदूषण के विपरीत प्रभावों का निराकरण हो उसके लिये मजबूत कदम उठाना आवश्यक है।

(6) अन्य प्रभाव : समाज में औद्योगिकीकरण, शहरीकरण और भौतिकवादी दृष्टिकोण जैसे-जैसे बढ़ता जा रहा है वैसे-वैसे प्रदूषण का समाज पर प्रभाव बढ़ता जा रहा है। पर्यावरण का असंतुलन और बढ़ता प्रदूषण अनेक सामाजिक प्रश्न

भी पैदा किया हैं। जैसे–कि समुद्री प्रदूषण बढ़ने से समुद्री सृष्टि नष्ट होने लगी है। हमको प्राप्त औषधियाँ और समुद्री आहार नष्ट होने के कारण मछुवारों के जीवन पर बुरा प्रभाव पड़ा है, वे लोग दूर तक मछली पकड़ने जाते हैं, फिर भी आवश्यक मात्रा में नहीं मिलती है, जिससे प्रच्छन्न बेरोजगारी आती है समय बाद गरीबी और बेरोजगारी की समस्या पनपती है।

प्राकृतिक आपत्ति और ग्लोबल वार्मिंग के कारण सामाजिक जीवन के कई पहलू पर भयानक प्रभाव पड़ा है। प्रादेशिक स्थानांतरण होने लगा, जिसके कारण बड़े नगरों की संख्या बढ़ी, प्रदूषण बढ़ने के कारण, आर्थिक असमानता बढ़ने से चोरी, अपराधों की समस्यावृद्धि, जो सामाजिक विघटन के लिये जिम्मेदार माना जा सकता है। वैसे, शहरों में हवा और आवाज का प्रदूषण बढ़ने से सार्वजनिक स्वास्थ्य खतरे में है। लोगों की दवाई का खर्च बढ़ने से, अर्थतंत्र पर विशेष प्रभाव पड़ता है।

आधुनिक समय में भौतिक सुख के लिए तीव्र उत्पादन हेतु अनेक साधन रखा, जिसमें से आवाज/ध्वनि प्रदूषण बढ़ने से दिमाग और स्वास्थ्य को हानि पहुँची है। रक्तदाब का बढ़ना, सिर दर्द के बाद मानसिक तनाव के कारण व्यक्ति हताशा का अनुभव करता है, जिसके कारण व्यक्ति के वैवाहिक और पारिवारिक जीवन पर असर होता है। शहर में बढ़ती आत्महत्याएँ विवाह विच्छेद की समस्याएँ इसी का कारण माना जा सकता है।

प्रदूषण का कानून होने के बाद भी उसकी कमियों के द्वारा भ्रष्टाचार की समस्या को बल मिलता है। कारण उद्योगों के लिए जमीन लेना, करचोरी, खाद्य वस्तुओं में मिलावट जैसी वृत्तियो में वृद्धि होती जा रही है।

ग्लोबल वार्मिंग का अर्थ

ग्लोबल वार्मिंग (Global Warming) का अर्थ : ग्लोबल वार्मिंग अर्थात् वैश्विक उष्णता। Global अर्थात् वैश्विक और Warming अर्थात् उष्णता। उष्णता के स्थान पर गर्मी–ताप शब्द भी प्रयोग होते हैं।

दुनिया के सभी देश वैश्विक उष्णता के लिए चिंतित है।

पृथ्वी के तापमान में हो रहे लगातार वृद्धि का वैश्विक उष्णता के रूप में पहचाना जाता है। औद्योगिकीकरण के कारण बड़े स्तर पर उद्योग, पेट्रोल, डीजल के वाहन तथा उनका उपयोग बढ़ने के कारण हवा में प्रदूषण बढ़ा है। सूर्य की गर्मी को कम करने वाले ओजोन परत में छेद होने के कारण सूर्य की किरणें जमीन पर सीधे आने लगी हैं। जिसके कारण पृथ्वी के तापमान में लगातार वृद्धि होती जा रही है। जिसके कारण से वैश्विक उष्णता बढ़ी है। वैश्विक उष्णता (Global Warming) के कारण जलवायु और तापमान में भरपूर परिवर्तन होने लगा है।

ग्लोबल वार्मिंग (Global Warming) का प्रभाव : वैश्विक उष्णता के खराब असर देखें।

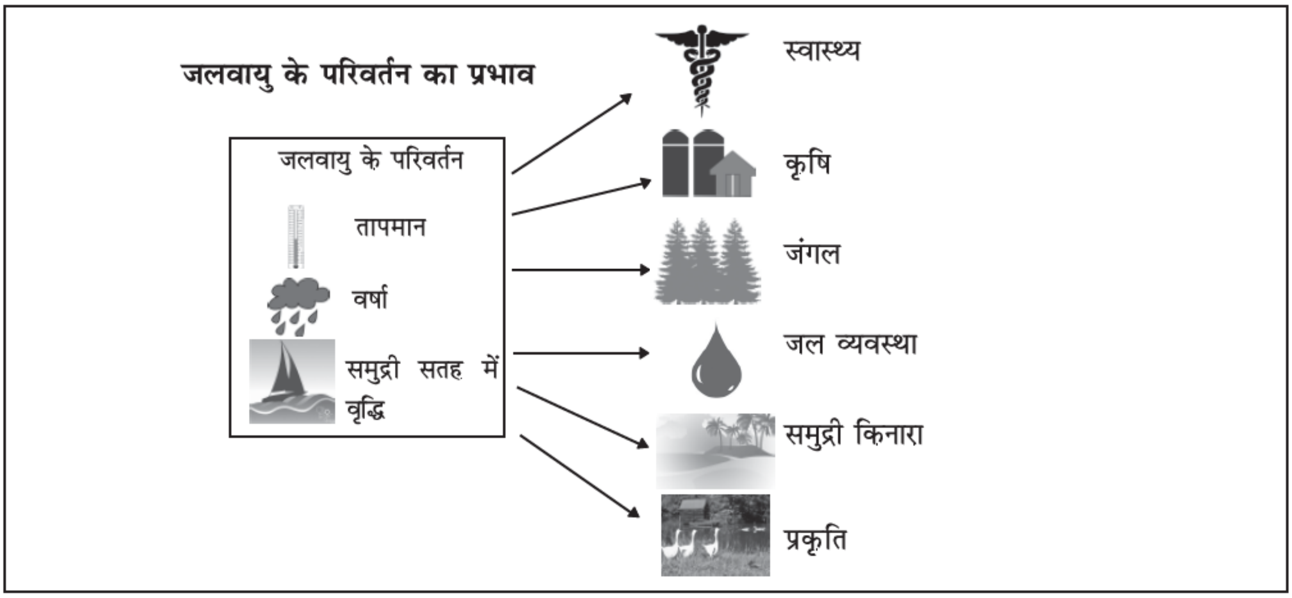

(1) बर्फ का पिघलना और समुद्री तल की वृद्धि : अधिक तेजी से बढ़ते हुए वायु प्रदूषण के कारण वायु मण्डल के निचली सतह में मिलने वाले ग्रीन हाउस में हवा की वृद्धि होने के कारण पृथ्वी का वायु मंडल ग्रीन हाउस (Green house) के रूप में बदलता जा रहा है। जिससे वायु मण्डल के तापमान में वृद्धि होती जा रही है। वैश्विक उष्णता के कारण हिमवर्षा होती है। यदि इसकी मात्रा बढ़े तो समुद्र सतह के भाग, असख्य द्वीप जलमग्न हो जायेगे। वैज्ञानिक अनुमान के अनुसार 21 वीं शताब्दी के अंत तक वैश्विक तापमान में 1° से 3° सेल्सियस तक वृद्धि हो सकती है। जिस कारण से ध्रुव प्रदेश के बरफ पिघल कर समुद्री सतह को एक मीटर जैसा उथल-पुथल कर सकते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय संस्था WWF (World Wide Fund) के विवरण अनुसार प्रत्येक दस वर्ष में 9.6 प्रतिशत की दर से बर्फ की सतह पिघल रही है। और यदि इसकी गति इसी तरह बनी रही तो इस शताब्दी के समाप्ति तक ध्रुव प्रदेश के बर्फ पिघल जायेंगे। परिणाम स्वरूप समुद्र के किनारे स्थिर स्थान डूब जायेंगे।

ग्रीन हाउस इफेक्ट

(2) जलवायु परिवर्तन : वैश्विक उष्णता के कारण विश्व व्यापी मौसम और जलवायु में परिवर्तन होने की संभावना है। वैश्विक उष्णता के कारण किसी क्षेत्र में अधिक गर्म हवा तो किसी क्षेत्र में भयंकर तूफान आता है। इसी क्रम से अकाल-अनावृष्टि की स्थिति आयेगी तो कहीं पर अतिवृष्टि के कारण बाढ़ आयेगी और जल प्रलय की स्थिति बन सकती है। जलवायु परिवर्तन के परिणाम स्वरूप कई हरे भरे मैदान मरुस्थल में बदल सकते हैं। और कई मरुस्थलीय क्षेत्रफल वर्षा होने से हरे-भरे हो सकते हैं। इस कारण से जैव जीवन के वितरण में बड़ा परिवर्तन और उथल पुथल हो सकती है।

(3) कृषि उत्पादन में कमी : जलवायु परिवर्तन से फसल के उत्पादन पर खराब प्रभाव पड़ता है। तापमान बढ़ने के कारण से जमीन के अंतर से अधिक बाष्पीकरण अधिक होगा, जिस कारण से भूगर्भीय जल स्तर नीचे जाने के कारण मिट्टी की उर्वरता घटेगी उसी प्रकार सिंचाई के लिए भूगर्भ में रहे पानी की प्राप्ति कम होगी। जिस कारण से फसल की उत्पादकता पर काफी असर पड़ेगा। इससे शुष्क खेती का प्रमाण बढ़ेगा और तिलहन एवं दलहन के उत्पादन पर असर पड़ेगा।

(4) जैव जीवन में संकट : ऑक्सफोर्ड विश्व विद्यालय के वैज्ञानिक और WWF का विवरण तैयार करने वाले मार्क न्यू (Mark New) के मतानुसार यदि वर्तमान दर से तापमान बढ़ेगा तो 2026 से 2060 के बीच पृथ्वी के तापमान में 2 की वृद्धि हो जायेगी इस कारण से ध्रुव प्रदेशी बरफ अधिक तीव्रता से पिघलेंगे/ज्ञात हुआ है कि बरफ और हिमखण्ड (शिखर) अधिक मात्रा में सौर विकिरण को परावर्तित करके अंतरिक्ष में वापस भेज देता है। यदि ध्रुव प्रदेशों का तापमान अन्य क्षेत्रों की तुलना में तीन गुना बढ़ जाये तो टुन्ड्रा प्रदेश में जलवायु के साथ वनस्पति भी प्रभावित होगी और इस कारण से यहाँ के ध्रुवीयभालू तथा अन्य जीवों पर संकट के बादल घिर जायेंगे उनका अस्तित्व समाप्त हो जायेगा। और आने वाले पीढ़ी उनके बारे में इतिहास की पुस्तकों से जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

इस तरह वैश्विक उष्णता से सजीव सृष्टि को भयंकर हानि हो सकती है।

विद्यार्थी मित्रो, इस प्रकरण स्पष्ट होता है कि, पर्यावरण और समाज, समाज के बीच का संबंध सबल रूप से जुड़ा है। पर्यावरण में परिवर्तन आने से मानव जीवन में भी परिवर्तन आता है। समाज की स्थिरता के लिए हम सभी को पर्यावरण का रक्षण करना अति आवश्यक है। इस कारण हम और समस्त विश्व पर्यावरण संबंधित अनेक दिवस जैसे-कि 5 जून विश्व पर्यावरण दिवस, 21 मार्च विश्व वन दिवस; 22 मार्च विश्व जल दिवस; 23 मार्च विश्व मौसम दिवस, 22 अप्रैल विश्व पृथ्वी दिवस के रूप में मनाते हैं। सत्य है? पर्यावरण का रक्षण करना हम सबका कर्तव्य है। इस विषय को हमें भूलना नहीं चाहिए, ठीक है!

विद्यार्थी मित्रो अध्ययन के बाद आने वाले वर्षों में आप समाजशास्त्र की अनेक शाखाओं के अध्ययन द्वारा समाज के अनेक पहलुओं का ज्ञान प्राप्त करेंगे।

स्वाध्याय

1. निम्नलिखित प्रश्नों के विस्तृत उत्तर लिखिए :

(1) पर्यावरण का अर्थ समझाइए, उसके मुख्य तत्वों का वर्णन कीजिए।

(2) पर्यावरण के घटकों के बारे में विस्तृत जानकारी दीजिए।

(3) पर्यावरण का मानव जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों का वर्णन कीजिए।

(4) मानव जीवन का पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों का वर्णन कीजिए।

2. निम्नलिखित प्रश्नों के मुद्देवार उत्तर लिखिए :

(1) निर्जीव तत्वों के विषय में सूचना लिखिए।

(2) पर्यावरण के प्रकार बताइए।

(3) प्रदूषण के किसी भी दो प्रकारों का वर्णन कीजिए।

(4) ग्लोबल वार्मिंग के प्रभाव का वर्णन कीजिए।

3. निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षेप में उत्तर दीजिए :

(1) पर्यावरण अर्थात् क्या?

(2) सजीव तत्व किसे कहते हैं?

(3) मैकाईवर ने पर्यावरण को कितने विभागों में विभाजित किया है?

(4) स्थानीय संबंध में मुख्य रूप से किन तीन विषयों का समावेश करते हैं?

(5) प्रदूषण के प्रकारों के नाम लिखिए।

(6) ग्लोबल वार्मिंग अर्थात् क्या?

(7) ग्रीन हाउस इफेक्ट किसे कहते हैं?

4. निम्नलिखित प्रश्नों का एक-एक वाक्य में उत्तर लिखिए :

(1) पर्यावरण के मुख्य घटकों के नाम लिखिए।

(2) सामाजिक पर्यावरण अर्थात् क्या?

(3) सांस्कृतिक पर्यावरण किसे कहते हैं?

(4) प्राकृतिक पर्यावरण किसे कहते हैं?

(5) रेखांश (देशांतर) क्या निश्चित करते हैं?

(6) पर्यावरण परिवर्तन के लिए कौन-सी दो प्रक्रियाएँ जिम्मेदार हैं?

(7) आकाश में किस वायु की परत होती है?

(8) WWF का पूरा नाम लिखिए।

5. दिये गये विकल्पों में से सही विकल्प चुनकर लिखिए :

(1) निम्नलिखित में कौन-सा तत्व पर्यावरण का निर्जीव तत्व नहीं है?

(अ) अग्नि (ब) सेटेलाइट (क) वायु (ड) पृथ्वी

(2) सामाजिक रीति-रिवाजों को किस पर्यावरण में समावेश किया जाता है?

(अ) अप्राकृतिक पर्यावरण (ब) भौगोलिक पर्यावरण

(क) आर्थिक पर्यावरण (ड) सांस्कृतिक पर्यावरण

(3) निम्नलिखित में से कौन-सा उद्योग मिट्टी के साथ नहीं जुड़ा है?

(अ) शन (ब) नारियल (क) रस्सी (धागा) (ड) डेयरी

(4) विश्व पर्यावरण दिवस कब मनाया जाता है?

(अ) 22 अप्रैल (ब) 21 मार्च (क) 22 मार्च (ड) 5 जून

(5) विश्व वन दिवस कब मनाया जाता है?

(अ) 23 मार्च (ब) 22 मार्च (क) 21 मार्च (ड) 22 अप्रैल

(6) 22 अप्रैल हम किस दिन के रूप में मनाते है?

(अ) विश्व जलवायु दिवस (ब) विश्व जल दिवस

(क) विश्व वन दिवस (ड) विश्व पृथ्वी दिवस

प्रवृत्ति

- मनुष्य और उसके चारों तरफ के पर्यावरण संबंधित तत्वों का चार्ट तैयार कीजिए।
- **'पर्यावरण का सामाजिक जीवन के साथ संबंध'** के विषय पर निबंध स्पर्धा आयोजित कीजिए।
- विश्व पर्यावरण दिवस को मनाकर उसका विवरण लिखिए।
- वृक्षारोपण करके, उसकी देखभाल कीजिए।
- प्रदूषण रोकने के लिए लोक जागृति के कार्यक्रम कीजिए।
- पर्यावरण संबंधी जगहों पर भ्रमण कीजिए।
- ग्लोबल वार्मिग विषय पर समूह चर्चा कीजिए।
- पर्यावरण की रक्षा के लिए विद्यालय में Eco club बनाइए।

●

परिवार वृक्ष

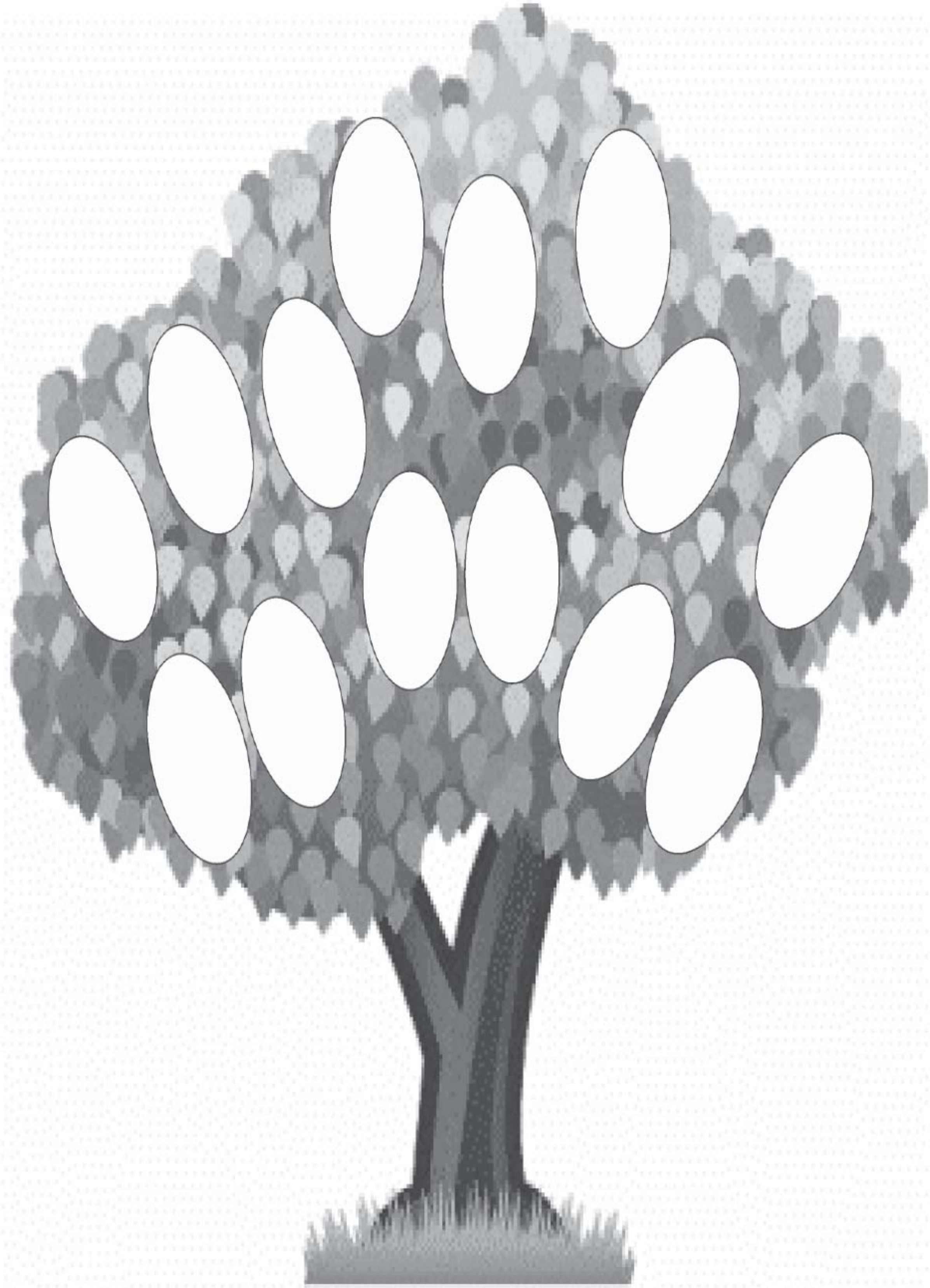

परिशिष्ट–2

उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों की शैक्षणिक आकांक्षाओं का समाजशास्त्रीय अध्ययन

(प्रश्नावली)

1. नाम : ....

2. वर्ग : (1) कक्षा 11 ☐ (2) कक्षा 12 ☐

3. अध्ययन का प्रवाह : (1) सामान्य प्रवाह : कला ☐, वाणिज्य ☐

(2) विज्ञान प्रवाह ☐

(3) व्यवसायलक्षी प्रवाह ☐

4. धर्म : (1) हिन्दू ☐

(2) इस्लाम ☐

(3) अन्य ....

5. जाति : (1) सामान्य ☐

(2) अनुसूचित जाति ☐

(3) अनुसूचित जनजाति ☐

(4) सामाजिक–शैक्षणिक पिछड़ा समूह ☐

(5) अन्य ....

6. आप उच्चतर माध्यमिक की शिक्षा पूर्ण करने के बाद क्या करना चाहते हैं?

(1) उच्च अध्ययन ☐ (2) नौकरी ☐

(3) स्वतंत्र व्यवसाय ☐ (4) अन्य ....

7. आप उच्च शिक्षा पूर्ण करने के बाद क्या बनना चाहते हैं?

(1) डॉक्टर ☐ (2) इन्जीनियर ☐

(3) चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट ☐ (4) शिक्षक ☐

(5) वकील ☐ (6) कुछ निश्चित नहीं ☐

8. अपनी शैक्षणिक आकांक्षाएँ लिखिए।

....

....

....

9. आप शैक्षणिक आकांक्षाओं की पूर्ति हेतु किसी का सहयोग लेंगे? (1) हाँ ☐ (2)ना ☐

यदि 'हाँ' है तो किसका?

....

10. अपनी विशेष सूचना लिखिए।

....

....

....

● ● ●